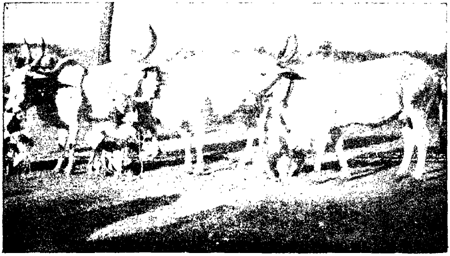


वार्षिक मूल्य
रु. ५-८-०

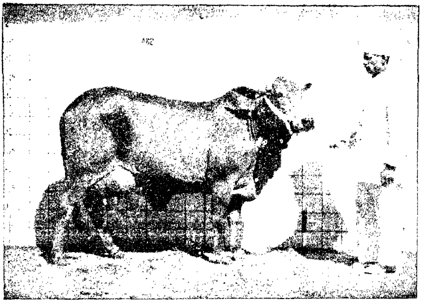
जनवरी
१९४६

इस अंक का मूल्य
रु. १

भिन्न भिन्न प्रदर्शनों में प्रथम पुरुष्कार प्राप्त करने वाली
नाड़ी (जि. सोलापुर) की उत्कृष्ट खिलार गायें



पुत्री माता नानी



सरकारी मिलिटरी डेअरी फार्म, फिरोजपुर, यहाँ की सबसे अधिक
दूध देने वाली सुदिनि नामक शाहीवाल गाय

मध्यप्रान्त-वरार सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा मिडिल स्कूलों, हाई स्कूलों, तथा नार्मल स्कूलों के लिये ऑर्डर १५०१ Genl D, (ता. ३।९।१९४५) के अनुसार स्वीकृत।

वार्षिक मूल्य रु. ५-८-०, वी. पी. से रु. ५-१२-०
विशेषांक किंमत रु. १-४-० (रजि. डाक व्यय मिलाकर)
एक प्रति ९ आना
हर महिने की १५ ता० को प्रकाशित होता है।
धर्मपेठ, नागपुर।
सम्पादक—**वि. ना. वाड़ेगाँवकर**
[खेती-बागवानी, विज्ञान, व्यापार-उद्योगधंधे, कलाकौशल, ग्रामसुधार, स्वास्थ्य आदि विषयों की एकमेव मासिक पत्रिका]

वर्ष २८ वाँ, अंक १ ला   जनवरी १९४६

विज्ञापन दाताओं से पत्र-व्यवहार करते समय उद्यम में विज्ञापन पढ़ा यह अवश्य ही लिखिये।

पारितोषक प्रतियोगिता का नतीजा
पृष्ठ नं. ५ पर देखिये।

वर्ष २८ वाँ, अंक १ ला.

जनवरी १९४६

[खेती-बागवानी, विज्ञान, व्यापार-उद्योगधन्धे, कलाकौशल, ग्रामसुधार, स्वास्थ्य आदि विषयों की एकमेव मासिक पत्रिका]

दुग्धव्यवसाय की सफलता का मार्ग

दूध को "पृथ्वी का अमृत" कहते हैं, जो वास्तव में बिलकुल सच है। शारीरिक स्वास्थ्य की उन्नति करने और उसको बनाये रखने की दृष्टि से दूध का असाधारण महत्व है। दूध के अन्तर्गत सभी मूल द्रव्य शरीर-पोषण तथा स्वास्थ्य वृद्धि की दृष्टि से इतने आवश्यक हैं कि उसे पूर्णान्न माना जाना अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता। पर आज तक दुग्ध-व्यवसाय को इस हद तक उपेक्षा और तिरस्कृत दृष्टि से देखा गया है कि उसके फलस्वरूप हमें आज सर्वत्र दूध का घोर संकट दिखाई दे रहा है। ऐसी खेदजनक अवस्था में इस राष्ट्रीय महत्व की समस्या का हल करने में सभी लोगों का व्यस्त होना बिलकुल स्वाभाविक है; परन्तु इस प्रश्न का सन्तोषजनक हल होने के लिये वास्तव में किन किन कामों को क्रमशः हाथ में लेना चाहिये, इसका लोगों को ज्ञान होना आवश्यक है और यदि ऐसा न हो सका, तो सारे प्रयत्न व्यर्थ ही जावेंगे। इस अड़चन को देखकर ही "उद्यम" ने इस विषय के तज्ञ और अनुभवी सज्जनों की सहायता से 'डेअरी विशेषांक' के रूप में आवश्यक जानकारी जनता की सेवा में पेश करने का प्रयास किया है।

श्री ना. वि. शारंगपाणी जी का परिचय

कोई भी धन्धा क्यों न हो, सफलतापूर्वक चलाने के लिये उसके कुछ महत्वपूर्ण नियमों का दक्षता पूर्वक पालन किया जाना आवश्यक होता है।



अन्य धन्धों की तरह दुग्ध–व्यवसाय का भी एक खास अनुभव सिद्ध शास्त्र है, जिसके अनुसार तन–मन और धन के साथ प्रयत्न करने वालों को ही उसमें सफलता मिल सकती है। प्रस्तुत विशेषांक के नियोजित लेखक श्री ना. वि. शारंगपाणी एक बड़े ही सफल और अनुभवी दुग्ध–व्यवसायी हैं। गत २० वर्षों से आपका यही एक मात्र व्यवसाय होने के कारण अनुभव और अध्ययन की दृष्टि से इस विषय पर आपका बहुत बड़ा अधिकार है। जब आपने दुग्धव्यवसाय करना शुरू किया, उस समय स्वतंत्र धन्धा करने की मनीषा और आकांक्षा के सिवाय आपके पास अन्य कुछ भी पूंजी न थी। इसी नैतिक पूंजी के भरोसे आपने आर्थिक पूंजी प्राप्त की और अनेक कष्ट झेलते हुए गत २०–२२ वर्षों में इस धन्धे को आदर्श रूप में लोगों के समाने ला खड़ा किया। इस धन्धे में जो जो अड़चनें आ सकती हैं, वे सभी उनके सामने भी आईं; किन्तु उन सभी अड़चनों का आपने अपनी वैज्ञानिक तीव्र बुद्धि एवं लगन के बल पर निराकरण किया। हिम्मत न छोड़ते हुए निश्चय के साथ प्रत्येक काम को करने वालों में से आप एक सजीव मूर्ति ही हैं। होनहार नौसिखिया धन्धे वालों को श्री नारायणरावजी शारंगपाणी अपने अनुभवों तथा ज्ञान के द्वारा सहायता पहुँचाने के लिये हमेशा तत्पर रहते हैं; ताकि उन्हें पुनः पुनः उन्हीं पुरानी अड़चनों का सामना न करना पड़े। आज तक आपने अनेकों महत्वाकांक्षी दुग्ध–व्यवसायियों का उचित पथ-प्रदर्शन कर धन्धा सुचारू रूप से चालू कर देने का श्रेय प्राप्त किया है।

केवल दूध का ही धन्धा करने में आपको सन्तोष नहीं हुआ। बरन साथ ही साथ बकरियाँ तथा मुर्गियाँ पालना; मिठाई, दही, घी मक्खन आदि बनाकर बेचना, उत्पत्ति–केन्द्रों (ब्रीडिंग सेन्टर्स) में छोटे पैमाने पर उन्नतिप्राप्त गौयें, भैंसें, साँड़, खेती के बैल आदि तैयार करना, गर्मी के मौसम में हरी घास की समस्या दूर करने के हेतु जंगली वनस्पतियों पर भिन्न भिन्न प्रयोग करना आदि कतिपय प्रयोग सफलता के साथ अपनी डेअरी में ही करने का प्रयत्न आप कर चुके हैं। वास्तव में आजकल ऐसा समय आ गया है कि अत्यधिक बड़े प्रमाण पर दूध पैदा करने पर भी वह शेष नहीं रह सकता; क्योंकि आवश्यकता के मान से दूध का उत्पादन बहुत ही कम है। अतः किफायत के साथ दुग्ध–व्यवसाय करने के लिये वर्तमान अवसर बहुत ही अच्छा है। पर इसके साथ ही अन्य धन्धे चलाने पर दूध का धन्धा अधिक लाभदायक हो सकेगा यह अलग से बतलाने की आवश्यकता नहीं है। दुग्ध व्यवसाय के साथ चलाये जाने योग्य अन्य धन्धों के विषय में विस्तृत विवरण इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

दुग्ध-व्यवसाय की अड़चनें कुशलता से हल कीजिये

किसी भी धन्धे में अड़चनों और रुकावटों का आना एक मामूली सी बात होती है। पर श्री शारंगपाणी जी के उदाहरण पर से यह बात सरलता से समझ में आ गई होगी कि व्यवहार–कुशल और सोच–समझकर काम करने वाला व्यक्ति अड़चनों को दूर कर यश शिखर पर चढ़ता है। दुधारू पशुओं का पर्याप्त संख्या में मिलना और दूध देना बंद किये हुए जानवरों का उस समय तक पालन करना, जब तक कि वे पुनः दूध देने न लग जायँ, ये ही इस धंधे की प्रमुख अड़चनें हैं; पर दुग्ध–व्यवसाय करनेवाले व्यक्ति यदि स्वयं इस का प्रबन्ध कर लें अथवा इसके लिये अलग धन्धा खोल लें, तो यह अड़चन आसानी से दूर हो सकती है। यदि हम इस व्यवसाय के इतिहास को देखें तो हमें यही मालूम होगा कि जिन गायों और भैंसों ने दूध देना बन्द कर दिया है, उन्हें बेचकर दूसरे दुधारू जानवरों को खरीदने की ही प्रथा आजतक चली आई है और इसीसे यह प्रश्न दिनोंदिन अधिक बिकट होता गया और होता जा रहा है। अतः ऊपर से लाभदायक दिखाई देने वाला यह रास्ता बदलकर शुरू में ही कुछ थोड़ी सी तकलीफ और खर्च उठाकर दूध टूटे हुए जानवरों के पालन पोषण का प्रश्न हाथ में

लेना चाहिये। ऐसा होने पर ही इस प्रश्न का थोड़े बहुत अंश में हल होना संभव दिखाई देता है।

दूसरी अड़चन है उच्च जाति के पशुओं का प्राप्त होना, इसके लिये उत्कृष्ट साँड़ों को रखकर उत्तम सन्तान पैदा करना चाहिये। उत्पत्ति-केन्द्र (ब्रीडिंग सेन्टर्स) खोलने से यह दूर हो सकती है। उच्च जाति के साँड़ों और गौओं के द्वारा दुधारू गौवें क्रमशः तैयार होते होते ४-५ पीढ़ियों में हमें अपने जानवरों की दूध देने की क्षमता पूर्णावस्था को पहुँची हुई दिखाई देगी। उन्नति-प्राप्त पशुओं की उत्पत्ति करते समय पशुओं की वंशावली का विवरण (रिकार्ड) रखना बहुत ही जरूरी है। इस विवरण-पत्र से अपने पशुओं की श्रेणी और उन्नति की वास्तविक कल्पना होने में बहुत सहायता मिल जाती है। अपनी डेअरी के प्रत्येक पशु के बारे में हर तरह की जानकारी (वंशावली, आयु, संतानोत्पत्ति, खिलाई का खर्च, दूध, आमद, बीमारी आदि) का विवरण जितना विस्तृत और क्रमबद्ध होगा, उतनी ही सहायता इस धंधे के लाभदायक होने में मिलेगी।

आजकल छोटे पैमाने पर भी दूध का धन्धा करना आसान नहीं है; क्योंकि इसके लिये भी अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है। धन्धा कम खर्च में चलाने के लिये दुधारू जानवर मोल लेने के बदले किराये से लेने की प्रथा शुरू करना चाहिये और इसी तरीके से दुग्ध-व्यवसाय के लिये लगने वाली पूंजी का प्रश्न हल होना आसान दिखाई देता है। आजकल गाय-भैंस के दूध की बहुत ही कमी है। उसकी पूर्ति के लिये बकरी के दूध का भी उपयोग शुरू कर देना चाहिये। स्वास्थ्य और खर्च की दृष्टि से बकरी का दूध लाभदायक होता है।

सहकारी तरीके से दुग्ध-व्यवसाय कीजिये

दुग्ध-व्यवसाय की सभी अड़चनों का सन्तोष-जनक हल होने के लिये व्यक्तिगत प्रयत्न किसी भी हालत में काम न दे सकेंगे। अतः जहाँ तक हो सके सहकारी तरीके से इन अड़चनों को दूर करने का प्रयत्न करना उत्तम होगा। पारस्परिक-सहयोग से किसी भी नये काम में लगने वाले कम-से-कम (minimum) खर्च का परिमाण बहुत कम होता है और कमखर्ची के साथ काम भी बन जाता है। सारे खर्च का बोझ किसी एक ही व्यक्ति के मत्थे न पड़कर मूलधन का भी उचित विभाजन हो जाता है। धन्धे की घातक प्रतिस्पर्धा बन्द हो जाती है और हर एक साझेदार को अपने अपने धन और कष्ट का उचित हिस्सा मिल जाता है। पारस्परिक सहयोग से केवल इतनी ही बातें हल न होकर इसके साथ ही अनेक बड़े बड़े महत्व के प्रश्न और मौलिक अड़चनें सरलता से हल हो सकेंगी। सहयोग के बल पर कई विशाल और नई योजनाएँ आसानी से सफल कर दिखाई जा सकती हैं। बड़े बड़े शहरों में बड़े भारी पैमाने पर सहकारी डेअरियाँ चलाने का काम हाथ में लिया जाय।

उद्यम-प्रतियोगिता का नतीजा

"उद्यम" मासिक-पत्रिका के सम्बन्ध में निजी स्पष्ट सम्मति सूचित करते हुए 'उद्यम' को अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली बनाने के हेतु आवश्यक सूचनाएँ भेजने के लिये हमने नवम्बर १९४५ के अंक में पाठकों से प्रार्थना की थी। फलस्वरूप सैकड़ों पाठकों ने बड़े प्रेम से इस प्रतियोगिता में भाग लिया, जिसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं। इस प्रतियोगिता का पूरा विवरण अगले अंक में प्रकाशित होगा। पुरस्कृत सज्जनों के नाम नीचे दिये गये हैं। पुरस्कार की रकमें सफल प्रतिद्वन्द्वियों को मनिआर्डर के द्वारा भेजी जा चुकी है।

१ ला पुरस्कार (१) **श्री दि. ग. जोशी**, बंबई
कुल २५ रु. (२) **श्री बी. एल्. चौधरी** बालंगीर

२ रा पुरस्कार (१) **श्री बा. ने. दिघे**, कोल्हापुर
कुल १५ रु. (२) **श्री देवेन्द्र आर्य**, मुरादाबाद

३ रा पुरस्कार (१) **श्री श्री. दा. उन्हेकर**, सीतापुर,
कुल १० रु. (२) **श्री मि. डी. शिंदेज**, मनमाड
(३) **श्री पन्नालाल अग्रवाल**, राजिम

प्रस्तुत विशेषांक की रूपरेखा

छोटे पैमाने पर डेअरी का धंधा चलाने के इच्छुक सज्जनों का उचित पथ-प्रदर्शन कर उनकी

प्रारम्भिक अड़चनें हल करने की दृष्टि से प्रस्तुत विशेषांक पाठकों की भेंट किया गया है, जिसमें दुग्धव्यवसाय के लिये आवश्यक प्रारम्भिक तैयारी से लेकर जानवरों के गोष्ठों की रचना, घास–चारा, दाने–पानी का प्रबन्ध, दुधारू जानवरों की परख और हिफ़ाजत, उच्च जाति के पशुओं की उत्पत्ति, डेअरी का प्रबन्ध और दैनिक कार्यक्रम तथा डेअरी के साथ ही साथ चल सकने वाले अन्य धन्धों की सचित्र जानकारी दी गई है। बचे हुए दूध का उपयोग, दूध से अनेक प्रकार की मिठाइयाँ बनाना, दूध के अन्तर्गत तत्वपदार्थ (मूलद्रव्य), प्रत्येक परिवार के लिये दूध सम्बन्धी व्यवहारोपयोगी उपयुक्त जानकारी आदि बातों का भी इस अंक में समावेश किया गया है। खेद की बात है कि सीमित पृष्ठ-संख्या के कारण संग्रहित सभी जानकारी हम इस अंक में प्रकाशित न कर सके। वह आगामी अंक में अवश्य ही प्रकाशित की जावेगी।

दुग्ध–व्यवसाय की उच्च शिक्षा ग्रहण कीजिये

वर्तमान वैज्ञानिक युग में दुग्ध–व्यवसाय में विज्ञान से सहायता लेना बहुत ही आवश्यक है। उसके बिना हम इस धन्धे में अद्यावत (Up-to date) सुधार करने में समर्थ न हो सकेंगे। अभी तक इस दृष्टि से भारत में कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया; किन्तु उसका होना आवश्यक है। कृत्रिम उपायों से गौ–निर्माण की बात यदि हम छोड़ दें, तो भी स्वच्छता और पशु–स्वास्थ्य के लिये हमें वैज्ञानिक ज्ञान की सहायता लेनी ही पड़ेगी। वरना हम दुग्ध–व्यवसाय का दर्जा ऊँचा न बढ़ा सकेंगे। वैज्ञानिक ज्ञान के बिना हम यंत्र–सामग्री का भी उपयोग न कर सकेंगे। यूरोप–अमेरिका का केवल अन्धानुसरण करना हमारे देश की परिस्थिति को देखते हुए कभी भी लाभदायक न होगा। अतः हमारे देश की परिस्थिति के अनुकूल अनुसन्धान कार्य होना जरूरी है। और इसके लिये उपलब्ध उच्च शिक्षा और अनुसन्धान की सुविधाओं से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये।

स्वदेशी विशेषज्ञों से सहायता लीजिये

वर्तमान युद्धोत्तर–काल में तरह तरह की योजनाओं (Schemes) की बड़ी धूम मची हुई है, जिसमें दुग्धोत्पादन की बड़ी बड़ी योजनाएँ सम्मिलित हैं। इन बड़ी बड़ी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये अधिक वेतन पाने वाले विदेशी (अर्थात् ब्रिटिश) योजना–विशेषज्ञों को हमारे देश में बुलवाने की एक प्रथा–सी पड़ गई है। ये 'विशेषज्ञ' केवल 'रिपोर्ट' पेश कर देते हैं और हजारों रुपियों से जेब गरम कर वापिस चले आते हैं। ये विदेशी 'विशेषज्ञ' भारत की परिस्थिति से अनभिज्ञ होते हैं, जिससे उनका अनुमान और अनुभव भारत की विभिन्न परिस्थिति में गलत सिद्ध होता है और फलतः वे हमारा ठीक ठीक पथ–प्रदर्शन करने में असफल रहते हैं। इसलिये पूर्णतया भारतीय और घरेलू धन्धों में इन विदेशी विशेषज्ञों से सहायता लेने के बदले हमारे देशी अनुभवी जानकारों से सहायता तथा परामर्श लेना सभी हालतों में युक्तिसंगत होगा और इससे निःसंदेह ही हमारी ये योजनाएँ अधिक सफल होंगी। महाराष्ट्र के एक अग्रगामी नरेश, श्रीमान् राजासाहब औंध, ने चार साल के पूर्व श्री शारंगपाणीजी से परामर्श कर अपनी रियासत में बड़े पैमाने पर डेअरी का आयोजन कर एक सराहनीय और अनुकरणीय उदाहरण हमारे सामने पेश किया है, जिसके लिये वे अभिनंदन के पात्र हैं।

प्रस्तुत विशेषांक की रचना में हमें श्री ना. वि. शारंगपाणी से अत्यधिक सहायता मिली है। साथ ही सर्वश्री भा. स. करमलकर, एम्. एस्सी; प्रो. श्री गो. वि. असोलकर, एम्. एस्सी; श्री शि. ना. घाटगे, आई. डी. डी.; श्री र. गो. करमरकर, बी. ए., एल्‌एल्. बी., श्री मो. तु. चौत्रे, एम्. एस्सी. (टेक्.) आदि अपने अपने विषय के अनुभवी और विशेषज्ञ लेखकों और सर्वश्री मूलगाँवकर, श्री लचके, श्री माली आदि कलाकारों ने अपनी कला से इस विशेषांक को उपयोगी बनाने एवं आकर्षक ढंग से सजाने में हमें बहुत सहायता पहुँचाई है, जिसके लिये हम इन सभी सज्जनों के आभारी हैं।

'इम्पीरियल रीचर्स इन्स्टिट्यूट' बंगलोर का अल्प परिचय

लेखक :—प्रो. गोपाल वि. असोलकर, एम्. एस्सी.

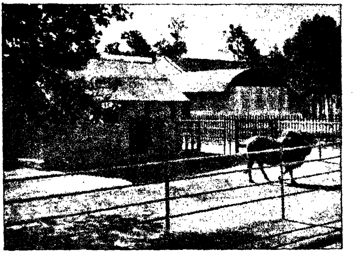
अखिल भारतवर्ष में शास्त्रीय पद्धति से डेअरी का संपूर्ण शिक्षण सिर्फ आगे दी हुई संस्थाओं द्वारा ही दिया जाता है—(१) डॉ. सेम हेगिन बाटम नामक ब्रिटिश शास्त्रज्ञ द्वारा अलाहाबाद के समीप स्थापित * "अलाहाबाद कृषि संस्था में" और (२) बंगलोर स्थित 'इम्पीरियल डेअरी रीसर्च इन्स्टिट्यूट' में। उचित तरीकों द्वारा डेअरी के सम्बन्ध से उच्च शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध और डेअरी के भिन्न भिन्न विभागों में अनुसन्धान कार्य करने की सुविधा सिर्फ बंगलोर में ही है। भिन्न भिन्न प्रान्तों के कृषि कालेजों में भी डेअरी और पशुशास्त्र (Animal Husbandary) विषय की शिक्षा दी जाती है; लेकिन अन्य विषयों जैसा ही इसे प्रमुख और स्वतंत्र विषय नहीं समझा जाता।

राइट रिपोर्ट की सिफारिशें

अन्य किसी भी देश की अपेक्षा हिन्दुस्थान में मवेशियों की संख्या अधिक है। अखिल विश्व की समस्त मवेशियों का एक तृतीयाँश भाग अकेले हिन्दुस्थान में मौजूद है तथा गाय-भैंसों की संख्या में भी अपने देश का अग्रस्थान है। लेकिन उनके पालन पोषण, संवर्धन तथा क्षमता आदि बातों में भारत पिछड़ा हुआ है। इस सोचनीय हालत को देखकर हिन्दुस्थान सरकार ने सन् १९३६ में प्रसिद्ध डेअरी तथा पशुशास्त्र तज्ञ डॉ. नार्मन राइट को हिन्दुस्थान की मवेशियों, डेअरियों आदि की तत्कालीन स्थिति पर एक परीक्षणात्मक रिपोर्ट तैयार करने के लिये कहा। यह रिपोर्ट १९३७ में सरकार द्वारा प्रकाशित की गई, जो 'राइट रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है।

इम्पीरियल डेअरी रीसर्च इन्स्टिट्यूट

राइट साहब ने अपनी रिपोर्ट में हिन्दुस्थान की मवेशियों की स्थिति सुधारने के सम्बन्ध से जो अनेक सिफारिशें सामने रखी हैं, उसमें डेअरी की शिक्षा प्रदान करने वाली अलाहाबाद और बंगलोर की शिक्षण संस्थाओं में कौन कौन से सुधार किये जाने चाहिये, इस सम्बन्ध से विशेष उल्लेख किया गया है। इन सिफारिशों के अनुसार १९२१ से "इम्पीरियल डेअरी इन्स्टिट्यूट, बंगलोर" के नाम से काम करने वाली संस्था का १९४२ में "इम्पीरियल डेअरी रीचर्स इन्स्टिट्यूट" (Imperial Dairy Research Institute) नाम रखा गया और उसके मुताबिक प्रस्तुत संस्था में डेअरी के नवीन विभाग खोले गये, जिनमें 'पोष्ट ग्रेज्यूएट सिलेबस' के सम्बन्ध से खास सुविधाएँ रखी गई हैं। इसके सिवाय हिन्दुस्थान की परिस्थिति की



इम्पीरियल डेअरी इन्स्टिट्यूट, बंगलोर की आदर्श साँड़शाला (Model Bull-Shed)

* इस संस्था के सम्बन्ध से विस्तृत विवेचन उद्यम के सितम्बर १९४५ के अंक में किया गया है।

ओर ध्यान देते हुए डेअरी के भिन्न भिन्न विभागों में अनुसन्धान कार्य किया जाना प्रारंभ किया गया। प्रत्येक विभाग के लिये प्रयोग शालाएँ भी स्थापित की जा रही हैं।

'डेअरी रीचर्स' के आद्य डाइरेक्टर–डॉक्टर डेवीस

हिन्दुस्थान सरकार ने जुलाई १९३९ में डॉ. विलिअम लुई डेवीस को 'डेअरी रीचर्स' के डाइरेक्टर पद पर नियुक्त किया और उन्हें इस इन्स्टिट्यूट के स्थापन का कार्य सौंपा। इस तरह बंगलोर की सरकारी संस्था का रीसर्च संस्था में रूपांतर किया गया। इस संस्था में "हिन्दुस्थानी दूध के भाँति भाँति के पदार्थ" इस विषय पर अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया गया। इसी तरह घी, दूध, छाँछ, दही, खोआ आदि पर भी अनुसन्धान कार्य शुरू कर रीसर्च इन्स्टिट्यूट को अद्यावत बनाने का प्रयत्न किया जाना प्रारंभ हुआ; लेकिन दुर्भाग्य से दो ही वर्षों में (१५ मई १९४१) डॉ. डेवीस की आकस्मिक मृत्यु हो जाने से उनके नेतृत्व में चलने वाले संशोधन कार्यों सम्बन्धी अपेक्षाएँ जहाँ की तहाँ रह गईं। बंगलोर की इस संस्था में आपके द्वारा किये गये कार्यों का आज भी कृतज्ञता के साथ उल्लेख किया जाता है।

वर्तमान कालीन डाइरेक्टर श्री एम्. सी. रंगास्वामी

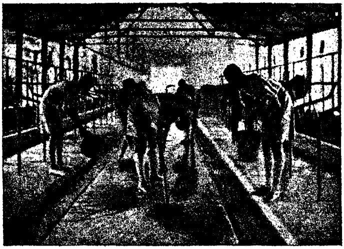
हिन्दुस्थान के सुविख्यात डेअरी तज्ञ (Imperial Dairy Expert) डॉ. मीठावाला १९३८ से लेकर आज तक 'इम्पीरियल डेअरी इन्स्टिट्यूट' का काम सम्हालते रहे। आपके कार्यकाल में बंगलोर के डेअरी इन्स्टिट्यूट की काफी उन्नति हुई। आजकल श्री एम्. सी. रंगास्वामी इन्स्टिट्यूट के अस्थायी डाइरेक्टर के नाते काम देखते हैं, जिन्होंने पहिले ही वर्ष में (१९२२) यहाँ से डिप्लोमा प्राप्त किया था। आपने स्काटलेंड जाकर डेअरी के सम्बन्ध से उच्च शिक्षा भी प्राप्त की है। आपका स्वभाव बहुत ही मिलनसार है। अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को हर तरह की सहायता करने के लिये आप हमेशा तत्पर दिखाई देते हैं।

संस्था का पूर्व इतिहास

सरकार ने सन् १९२१ में मिलिटरी से 'वेलिंग्टन मिल्क डेपो' और 'बंगलोर फार्म' लेकर मि. स्मिथ साहब के संचालकत्व में इम्पीरियल डेअरी इन्स्टिट्यूट नाम की संस्था स्थापित की। प्रारंभ में प्रति तीसरे वर्ष डेअरी शिक्षण के लिये २० विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता था और दो वर्ष में उन्हें डेअरी के भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा देकर अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण होने पर आई. डी. डी. (Indian Dairy Diploma) नामक डिप्लोमा दिया जाता था। पहिले पन्द्रह वर्षों में सिर्फ फार्म और डेअरी की शिक्षा पर ही अधिक जोर दिया गया। अनुसन्धान कार्य बहुत ही कम हुआ। क्योंकि उस समय अनुसन्धान कार्य की दृष्टि से सुविधाएँ बहुत ही कम थीं।

प्रस्तुत महायुद्ध के कुछ समय पूर्व जनता तथा सरकार का ध्यान दुग्धव्यवसाय की ओर अधिक आकर्षित होने के कारण इस आई. डी. डी. के

शिक्षाक्रम के लिये प्रतिवर्ष २०–२५ विद्यार्थियों को प्रवेश देना सरकार ने निश्चित किया। १९४२ में इस संस्था का रुख इम्पीरियल डेअरी रीचर्स इन्स्टिट्यूट में रूपान्तर होने के कुछ समय पूर्व से (डॉ. डेवीस के कार्यकाल से–राइट रिपोर्ट के पश्चात्) अनुसन्धान की ओर अधिकतर झुका हुआ दिखाई देता है। आजकल प्रति वर्ष आई. डी. डी. के लिये ३० विद्यार्थी लिये जाते हैं। इसके सिवाय अनुसन्धान–कार्य और पोष्ट ग्रेज्युएट ट्रेनिंग के लिये भी अलग विद्यार्थी लिये जाते हैं।



'इंडियन डेअरी डिप्लोमा' के विद्यार्थी गण मवेशियों का गोष्ठ साफ कर रहे हैं'।

संशोधन की ओर ही अधिक झुकाव

फिलहाल इस संस्था के भिन्न भिन्न विभागों में १२ विद्यार्थी संशोधनात्मक कार्य कर रहे हैं। २५ विद्यार्थी रीसर्च इन्स्टिट्यूट तथा हिन्दुस्थान सरकार के कृषि विभाग की विभिन्न योजनाओं में कार्य कर रहे हैं। अभी ऐसी सात योजनाएँ (Schemes) अमल में आई हैं। भारत की डेअरियों का कार्यक्षेत्र अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही भिन्न है, जिससे प्रत्येक कृति, पद्धति (Process) और यंत्र सामग्री में अपनी परिस्थिति के अनुसार उचित फर्क करने के लिये अनुसंधान कार्य की अत्यधिक आवश्यकता है और यह कार्य बंगलोर में प्रस्तुत डेअरी की सिर्फ एक ही संस्था में बड़े जोरशोर से चलाया जा रहा है। यह बहुत ही सन्तोष की बात है।

संस्था के कार्य का स्वरूप

गत अक्टूबर में मुझे इस संस्था को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह संस्था बंगलोर केन्टोनमेन्ट के नीलसुन्द्रा लाइन्स के आगे शहर के बिलकुल बाहरी भाग में है। संस्था के पास करीब करीब २५० एकड़ जमीन है,जिसमें से ८१ एकड़ जमीन अनाज पैदा करने के लिये और ६५ एकड़ भूमि मवेशियों के चराहगाहों के लिये उपयोग में लाई जाती है। इसके सिवाय १० एकड़ के प्लाट में ल्युसर्न, नेपिअर, गिनी, सुदान आदि जाति के घास गाय–भैंसों के लिये बड़ी सतर्कता से तैयार किये जाते हैं। गाय–भैंसों को कौनसी जाति का घास खिलाने से अधिक दूध प्राप्त हो सकेगा, इस सम्बन्ध में गत कुछ वर्षों से अनुसन्धान कार्य जारी है।

१९४१ में इस संस्था का पुनर्संगठन कर उसका काम आगे दिये गये मुख्य चार विभागों में विभाजित किया गया है—

(१) दूध की पैदायश का तंत्र (Dairy Technology).

(२) दुधारू जानवरों का संवर्धन (Dairy Husbandry)

(३) डेअरी रसायन (Dairy Chemistry).

(४) दूध का कृमिशास्त्र (Dairy Bacteriology).

मुख्य इमारत—इस इमारत में दूध इकट्ठा करने के यंत्र, पाश्चराइझेशन (Pasteurization) आदि यंत्रसामग्री है। प्रतिदिन दूध की निगरानी, बँटवारे (Distribution) आदि का कार्य यहीं से होता है। दूध को जल्दी उबालकर इकट्ठा करने की (Short time high temperature Pasteurization) यंत्रसामग्री तथा पद्धति प्रेक्षणीय है। इस इमारत के ऊपरी मंजिले पर डेअरी का आफीस है।

डेअरी टेक्नॉलॉजी विभाग—मुख्य इमारत से लगा ही हुआ डेअरी इंजिनीयरिंग विभाग है। यहाँ बहुत सी योजनाएँ और प्रयोग चालू हैं। देहातों से शहरों में दूध लाने के लिये उपयुक्त बर्तन, यंत्रसामग्री आदि पर आजकल यहाँ अनुसन्धान कार्य हो रहा है। इस विभाग में दही को मथने के लिये आधुनिक तरीके से बनाई हुई मथानी, दूध औटाकर (Condensed) तैयार करने की यंत्रसामग्री, खोआ तैयार करने का नूतन तरीका, दूध से पाउडर (Milk Powder) और क्रीम बनाने की सुलभ पद्धति तथा सस्ती और टिकाऊ यंत्रसामग्री आदि देखने लायक है।

डेअरी रसायन शाला—उक्त विभाग के समीप ही यह रसायनशाला है। यहाँ दूध और दुग्धजन्य भिन्न भिन्न पदार्थों (घी, खोआ, चीज, मक्खन, क्रीम आदि) के गुणधर्मों और रसायन क्रियाओं पर अनुसन्धान कार्य चलता है। खासकर घी के अंतर्गत रासायनिक जीवनद्रव्य (Vitamins), दूध जम जाने का तापमान (Freezing point), चीज (Cheese) तैयार करने के लिये आवश्यक रेनेट (Rannet) नामक द्रव्य आदि पर बहुत प्रशंसनीय कार्य हो रहे हैं। इस विभाग के मुखिया डॉ. दस्तूर एक बड़े विद्वान रसायनज्ञ हैं। अनुसन्धान कार्य की ओर तथा दुग्धजन्य पदार्थों को खास दर्जे के तैयार करने की ओर (Standardisation) वे अधिक ध्यान देते हैं।

डेअरी कृमिशास्त्र प्रयोग शाला—रसायन शाला के समीप ही इस विभाग की प्रयोग शाला है, जहाँ दही-दूध में स्थित भिन्न भिन्न जंतुओं (Bacteria) के कारण उन पदार्थों के मूलद्रव्यों पर होने वाले परिणाम और उत्तम दूध की पैदायश करने के लिये आवश्यक परिस्थिति के सम्बन्ध से अनुसन्धान कार्य चालू है। यह बिलकुल नवीन प्रयोगशाला है।

ग्रंथालय और संग्रहालय—उक्त प्रयोगशाला के बाजू में एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है, जिसमें डेअरी से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रामाणिक ग्रंथों का संग्रह किया गया है। यहाँ डेअरी के प्रत्येक विभाग से सम्बन्धित अधिकृत पुस्तकें और शास्त्रीय मासिक पत्र रखे रहते हैं। इन्स्टिट्यूट का संग्रहालय भी (Museum) शैक्षणिक दृष्टि से प्रेक्षणीय है। यहाँ दूध से सम्बन्धित सभी व्यवहारोपयोगी जानकारी भी बड़े बड़े बोर्डों पर आकर्षक ढंग से लिखकर रखी गई है। साथ ही दूध से बनाये गये भिन्न भिन्न पदार्थों के नमूने भी व्यवस्थित रखे हैं।

डेअरी हसबंडरी विभाग—यह विभाग बहुत दूर तक फैला हुआ है। यहाँ ३०० सिंधी, और १५० गिर जाति की गायें हैं। यहाँ गायें-भैंसें, साँड आदि मिलकर कुछ १००० मवेशियाँ होंगी। यह और वेलिंग्टन डेअरी ३० लाख सैनिकों को दूध और दुग्धजन्य पदार्थ पुराती हैं। इस विभाग की आदर्श साँड़शाला (Model Bull Shed) देखने लायक है। इस साँड़शाला की बिलकुल आधुनिक ढँग पर रचना की

गई है तथा यहाँ आधुनिक तंत्र की उत्पादन योजना का भी प्रबंध है।

आधुनिक दुग्धशाला— यहाँ की सबसे आकर्षक और मनोवेधक जगह अर्थात् यहाँ की दुग्ध-शाला है। इस आधुनिक और नमूने की दुग्ध-शाला में (Modern milking Byre) २०-२५ गिर या सिंधी जाति की गायें और मुन्हा जाति की भैंसें बिलकुल अद्यावत (Up-to-date) तरीकों से रखी गई हैं। यहाँ का फर्श एक विशिष्ट सीमेंट से बनाया गया है। सभी दृष्टियों से गायों का संवर्धन और पालन पोषण आधुनिक ढंग से किया जाता है। दूध दुहने के बर्तन और उसका तरीका भी आधु-निक और नवीनतापूर्ण है। इस गोशाला के प्रवेशद्वार पर आगे दिया हुआ मजमून खुदवाकर रखा हुआ दिखाई देगा—

जिल की स्मृति में

जन्म ता. १८-१०-१९०९

मृत्यु ता. १४-४-१९२८

इस गाय ने अपने जीवन में १८ बछड़ों को जन्म दिया और १५४७७९ पौण्ड दूध दिया।

संस्मरणीय जिल गाय

यह संस्मरणीय जिल गाय बड़ी अजीब ही ढंग की होगी। क्योंकि एक तो किसी भी गाय का लगातार बीस सालों तक दूध देते हुए जीवित रहना असंभव सा दिखाई देता है और यदि ऐसा हुआ भी तो उसका १८ बछड़ों को जन्म देना और भी कठिन है। इसके सिवाय अपने जीवन में क्वचित ही कोई गाय इतनी अधिक मात्रा में दूध दे सकती है। ऐसा कहते हैं कि पू. महात्मा गांधी किसी समय अपनी तन्दुरुस्ती के लिये इस डेअरी के पास ही कहीं रहा करते थे। वे हमेशा इस डेअरी के बाजू में घूमने के लिये जाया करते थे। वे इस जिल गाय से बहुत प्रेम करते थे।

संस्था का विविध शिक्षाक्रम

पूरी संस्था और उसके विभिन्न विभागों को देखने के बाद मैंने वर्तमान के डाइरेक्टर श्री रंगास्वामी से वहाँ के उपलब्ध भिन्न भिन्न शिक्षाक्रमों तथा सुविधाओं के सम्बन्ध से चर्चा की। उन्होंने मुझे आगे दी हुई जानकारी से परिचय कराया—

आय डी. डी. (I. D. D.)— इंडियन डेअरी डिप्लोम का शिक्षाक्रम दो वर्ष का है और वह अलाहा-बाद या बंगलोर में कहीं भी प्राप्त किया जा सकता है। राइट साहब ने अपनी रिपोर्ट में इस शिक्षाक्रम की बड़ी प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में बतलाया है कि फिलहाल सिर्फ विदेशी चीज (Cheese) और मक्खन (Butter) की ओर हद से ज्यादा जोर दिया जा रहा है। अतः हिन्दुस्थान के लिये पोषक भिन्न भिन्न पदार्थों की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

इन दो वर्षों में गोरक्षण, दुग्धव्यवस्था तथा दूध और दूध से तैयार होने वाले अन्य पदार्थों के दोष आधुनिक ढंग से खोजकर उनको जड़ से नष्ट करने के सम्बन्ध से उत्कृष्ट शिक्षा दी जाती है। राइट साहब का मत यहाँ पर उल्लेखनीय होगा कि इस डिप्लोमा का महत्व किसी भी विदेशी डिप्लोमा की अपेक्षा कम नहीं है।

यहाँ डेअरी फार्मिंग, डेअरी और क्रीमरी (Creamary) व्यवस्था (Management), पशुशास्त्र (Animal Husbandry), डेअरी रसायन, डेअरी कृमिशास्त्र (Dairy Bacteriology), फार्म और डेअरी इंजि-नीयरिंग, बुक-कीपिंग, डेअरी अर्थशास्त्र [Economics] और कोआपरेटिव्ह डेअरिंग [Cooperative Daring] आदि आठ विषयों पर एक-एक घण्टे तक कम से कम ५०० लेक्चर्स दिये जाते हैं। इसके सिवाय इन दो वर्षों में प्रेक्टिकल ट्रेनिंग भी दिया जाता है और प्रयोगशाला में काम करना भी सिखलाया जाता है।

अभी तक इस संस्था से कुल ५०० विद्यार्थियों ने शिक्षा प्राप्त की है और वे देश के विभिन्न भागों में इसी धन्धे का काम कर रहे हैं। इस शिक्षाक्रम को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थी का कम से कम मेट्रिक पास होना आवश्यक है और

उसकी उमर १७ साल से ऊपर होनी चाहिये। शिक्षण कार्य नवम्बर मास से प्रारंभ होता है। फीस प्रति माह १५ रु. है।

पोष्ट-ग्रेज्युएट कोर्सः- इसका शिक्षणकाल पन्द्रह माह का है और वह जनवरी में प्रारंभ किया जाता है। आई. डी. डी. कोर्स उत्तीर्ण हुए तथा कृषि या पशुशास्त्र में उपाधि प्राप्त किये हुए विद्यार्थियों को ही इसके लिये प्रवेश दिया जाता है। फीस प्रति माह २५ रु. है। डेअरी की उच्च और शास्त्रीय शिक्षा पाने के लिये यह शिक्षाक्रम रखा गया है। इन विद्यार्थियों को किसी एकाध विषय पर अनुसन्धान करने का मौका दिया जाता है।

शॉर्ट कोर्स— डेअरी के किसी भी एक विशेष विभाग की व्यवहारिक तथा प्रायोगिक जानकारी अल्पावधि में आधुनिक ढंग से पढ़ाने के लिये इसका प्रबंध किया गया है। साधारणतः यह शिक्षाक्रम तीन महिने का होता है। शिक्षा का समय, लिये हुए विषय पर अवलंबित होता है। इस कोर्स की फीस प्रति माह १५ रु. है। जिस विषय की शिक्षा प्राप्त करनी है, वह विषय, उसका समय, कोर्स तथा प्रारम्भ करने की तारीख आदि बातें पहिले ही डाइरेक्टर से पत्रव्यवहार कर निश्चित कर लेनी पड़ती है। डेअरी का काम करने वालों के लिये या डेअरी का सर्वसाधारण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों के लिये यह अल्पावधि का प्राथमिक शिक्षण उत्तम है। इसमें किसी को भी प्रवेश मिल सकता है। देश के प्रत्येक प्रांत के सैकड़ों लोगों ने यह शिक्षा प्राप्त कर ली है। जिन्हें डेअरी के सम्बन्ध से सर्व साधारण शिक्षा अल्पावधि में प्राप्त करने की इच्छा हो, उनके लिये यह कोर्स सिफारिश करने के लायक है।

जानकारी और अनुसन्धान कार्य- अनुसन्धान कार्य करने के लिये उसके विषय आदि के सम्बन्ध से डाइरेक्टर से पत्रव्यवहार कर जानकारी प्राप्त करनी पड़ती है। गत पाँच वर्षों में डेअरी के प्रत्येक विभाग में अनुसन्धान कार्य शुरू किया गया है और उम्मीद की जाती है कि इसके आगे भी उसका बड़े पैमाने पर विकास होगा।

जिनकी खुद की डेअरी है या जिनको डेअरी की खास चाह है, उन लोगों को डेअरी चलाते समय आने वाली स्वाभाविक अड़चनें, प्रश्न इ. के सम्बन्ध से उपयुक्त सलाह तथा आवश्यक जानकारी यहाँ से प्राप्त हो सकती है।

निवास स्थान-इन्स्टिटयूट का एक हवादार निवास स्थान भी है। जिसमें कुल ८५ विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध किया गया है। प्रति माह फीस २ रु. है। आजकल साधारणतः प्रति माह ७५-८५ रु. तक प्रति माह खर्च आता है।

संस्था शीघ्र ही देहली जावेगी।

आजकल सरकार की ओर से इस संस्था को प्रति वर्ष ३ लाख रुपिये की मदद मिलती है। आगे दो-तीन वर्षों में ही यह संस्था देहली के समीप ले जाने का विचार किया जाता है। हिन्दुस्थान की सब डेअरियों का केन्द्रस्थान देहली में होने के कारण राइट साहब ने इस संस्था के स्थानांतर की सिफारिश की थी; जो शीघ्र ही अमल में लाई जावेगी, ऐसा श्री रंगास्वामी का अनुमान है।

मेरे मित्र श्री के. एय्या ने मेरे साथ घूमकर सब इन्स्टिटयूट से मुझे परिचित कराया, जिससे मुझे इस स्वर्णावसर से लाभ उठाने का मौका मिला; जिसके लिये मैं उनका आभारी हूँ। श्री. एय्या इस संस्था के बड़े प्रख्यात विद्यार्थी हैं। थोड़ा ही समय हुआ वे डेअरी से सम्बंधित विषय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अमेरिका गये हैं। श्री रंगास्वामी ने, जो आजकल इस संस्था के डाइरेक्टर हैं, सम्पूर्ण जानकारी देने की कृपा की। इस कृपा के लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ और उन्हें हृदय से बधाई देता हूँ।

बम्बई शहर की दुग्धसमस्या

ले.—श्री र. गो. करमरकर, बी.ए., एलएल.बी., मालिक,
बॉम्बे एक्स्प्रेस डेअरी फार्म, गोरेगाँव, बम्बई

[आजकल बम्बई शहर की दुग्ध पूर्ति के कार्य में बम्बई सरकार ने अपना हाथ डालना शुरु किया है, जिसको देखकर लोगों में एक बड़ी ही कुतूहल का वातावरण पैदा हो गया है। दुग्धपूर्ति जैसे अत्यधिक महत्व के विषय में सरकार का ध्यान आकर्षित होना सचमुच ही बम्बई शहर के लिये एक बड़े सौभाग्य की बात है। किन्तु बम्बई सरकार के द्वारा किये जाने वाले इन प्रयत्नों की दिशा जनता के लिये कहाँ तक हितप्रद एवं पोषक हो सकेगी, इसी बात पर प्रस्तुत छोटे से लेख में प्रकाश डाला जा रहा है।]

दूध-नियंत्रण की नीति अनिश्चित थी

युद्ध की वजह से सभी वस्तुओं के भाव तेजी से बढ़ने लगे, और उसी मान से दूध का भी भाव बढ़ा। पहिले पांच-छः आने सेर मिलने वाला दूध आजकल चौदह आने से रुपिया सेर तक पहुँच गया। इस परिस्थिति से सरकार के मन में यह भय उत्पन्न होने लगा की कहीं मानव जीवन के लिये दूध जैसी आवश्यक वस्तु गरीबों की शक्ति के बाहर न हो जाय। शायद अन्य वस्तुओं पर लगाये गये नियंत्रण जैसा ही दूध पर भी नियंत्रण लगाने से यह प्रश्न हल हो जायगा, ऐसा सरसरी दृष्टि से विचार कर बम्बई सरकार ने इस विषय में हाथ डाला। वास्तव में नियंत्रण और वितरण में सफलता प्राप्त करने के लिये उत्पादन और नियंत्रित पूर्ति पर कब्जा होना आवश्यक होता है। बम्बई की धान्य वितरण योजना इसी तत्व के आधार पर स्थित होने के कारण सफल हो सकी और जनता ने उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की। लेकिन दूध नियंत्रण का परिणाम बिलकुल ही उलटा निकला। सचमुच तो दुग्ध उत्पादन के लिये, आवश्यक सभी वस्तुओं पर (भैंसें, खुराक, चारा आदि) सरकार का सम्पूर्ण नियंत्रण होना आवश्यक था। लेकिन ऐसा न होने से सरकार डेअरी वालों को इन वस्तुओं की पूर्ति उचित मात्रा में न कर सकी। जब जब दूध की कमी महसूस होनी लगती तब तब तरह तरह की आज्ञाएँ निकालकर

का अल्प परिचय

बी. बी. सी. आई रेलवे के गोरेगाँव स्टेशन पर उतर कर घोड़ बन्दर रास्ते की ओर जाने पर आपको दाहिने हाथ की ओर मवेशियों के बड़े बड़े तीन-चार गोष्ठ दिखाई देंगे। यही गोरेगाँव का बाम्बे एक्स्प्रेस डेअरी फार्म है। शायद इस बात पर लोगों को विश्वास नहीं होगा कि इस डेअरी फार्म के स्वामी श्री करमरकर पहिले वकीली का धन्धा करते थे; किन्तु बात है बिलकुल सही। प्रारंभ में जब आपने बहुत ही अल्प पूंजी पर डेअरी चालू की तब आपके पास सिर्फ दस-बारह ही भैंसें थीं; लेकिन आज कम से कम २००-२५० भैंसें आपके गोष्ठों में दिखाई देती हैं। अविश्रान्त परिश्रम कर आपने अपने धन्धे को लोगों के सामने आदर्श रूप में ला खड़ा किया है। सिर्फ मवेशियों का पालन पोषण कर दुग्धव्यवसाय करना तथा उससे मनमाना लाभ प्राप्त करना इतनी संकुचित मनोवृत्ति एवं दृष्टि कोण से आपने अपना धन्धा बिलकुल भी नहीं किया। बरन जनता को स्वच्छ और खालिस दूध विपुल मात्रा में कैसे मिलेगा, कसाई खानों में होने वाले उत्कृष्ट मवेशियों के संहार को किस तरह रोका जा सकेगा, उनकी उचित हिफाजत किस ढंग से की जानी चाहिये आदि बातों की ओर आपने प्रमुखता से ध्यान दिया। "दूध से टूटी हुई भैंसों की अद्ययावत् (Up-To-Date) तरीकों से हिफाजत नहीं की गई तो डेअरी का धन्धा कभी भी उन्नति को प्राप्त नहीं कर सकता" यह आपकी दृढ़ कल्पना है और इसी दृष्टि से आपने कुछ ही दिन हुए "निरा" नामक स्थान पर दूध से टूटी हुई और गाभिन भैंसों का पालनपोषण करने के सम्बन्ध से प्रयोग करना शुरू किया है।

वर्तमान युद्धजन्य परिस्थिति के कारण पैदा होने वाली अड़चनें, सरकारी नियंत्रण, विपुल पूंजी के अभाव से होनेवाली तकलीफ आदि विपत्तियों से मुकाबला कर सिर्फ अत्यधिक ध्येयनिष्ठा एवं उसके लिये अहोरात्र अविश्रान्त परिश्रम करने की तैयारी, आने वाली परिस्थिति में से बेदाग निकल जाने की कला आदि गुणों के बल पर कुछ ४-४½ वर्षों में तथा इतनी छोटी उमर में अपने व्यवसाय को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया हुआ देखकर किस भारतवासी के हृदय में आपके लिये अभिमान और गौरव पैदा न होगा। हमें विश्वास है कि उद्यम के पाठकों के लिये आपके अनुभव उपयुक्त तथा पथप्रदर्शक हो सकेंगे।

दूध की पूर्ति करते करते सरकार की नाकों दम आ गया।

नियंत्रणों की बढ़ती कमान

पहिले पहल श्रीखण्ड, बसौंदी, आईस्क्रीम आदि दूध से बननेवाली चीजोंपर नियंत्रण लगाया गया। फिर चाय के लिये उपहारगृह अमुक समय पर ही खुले रखने चाहिये ऐसा हुक्म निकाला और साथ ही दूकानों में गरम दूध के विक्रय पर नियंत्रण लगाया गया। इतना सब होने के बाद भी जब असफलता ही पल्ले पड़ी तब चाय के लिये दूध देना बन्द कर विदेशी दुग्ध–पाउडर का ही बनाया दूध उपयोग में लाने के लिये सक्ती की गई जिससे सुविधा होने के बदले लोगों को और भी अधिक कष्ट होने लगे। उपहारगृहों से सिर्फ पकी हुई चाय का पानी मँगवाकर उसमें घर का पाउडर डालकर लोगों को चाय पीना पडता था। इतनी झंझट उठाने के बाद भी जब उत्तम चाय का मिलना दुर्लभ हो गया तब लोग चाय पीना ही बन्द करने लगे। पर ऐसा करना भी सरकार की आँखों से न बच सका और इसपर भी सरकार ने कानूनन बंदी लगा दी। अन्त में भारत–रक्षा कानून के अन्तर्गत डेअरी वालों से जबरदस्ती दूध वसूल किया जाने लगा। और इन सब चालबाजियों को जनता से छिपाने के लिये उसके मर्मस्थल को छूकर सरकार यह ढिंढोरा पीटने लगी की हम यह सब आपके बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों के लिये ही कर रहे हैं। इसका जनता पर काफी अच्छा असर हुआ। डेअरी वालों से बारह आने सेर के हिसाब से दूध खरीदकर वह छः आने सेर के भाव से जनता को दिया जाने लगा। इस तरह सरकार प्रति सेर पर अपने छः आने खर्च करने लगी। फिर भी पर्याप्त दूध कम भाव में मिलना सम्भव न हो सका।

व्यापारियों को उचित भाव का विश्वास नहीं दिलाया गया

आज की परिस्थिति में व्यवसायी को इस बात का विश्वास दिला दिया जाना चाहिये था कि दुग्ध–उत्पादन के खर्च को छोड़कर उसे कितनी बचत होगी, फिर वह कम से कम क्यों न हो पर हो निश्चित। बिना इस बात के हुए, धन्धे की वृद्धि की ओर किसका ध्यान लगेगा? फिलहाल बच्चों को दूध पुराने के लिये सरकार बारह आने सेर के भाव से दूध खरीदती है; लेकिन यही भाव हमेशा कायम रहेगा ऐसा सरकार की ओर से धन्धे वालों को कभी भी विश्वास दिलवाया नहीं गया। परिणाम स्वरूप दूध के सभी व्यापारी शंकित मनःस्थिति में रहकर कैसे तो भी धन्धा चला रहे हैं।

दूध–उत्पादन–व्यवस्था पर्याप्त नहीं

बम्बई शहर की दुग्ध पूर्ति के लिये प्रति वर्ष ७५,००० भैंसें की आवश्यकता है, जिसमें से लगभग २४,००० भैंसें आज बम्बई सरकार अन्य प्रान्तों से मिला सकेगी। शेष भैंसों की पूर्ति उन भैंसों के पुनः ब्याने के बाद ही हो सकती है, जिनका दूध टूट जाने के कारण वे बम्बई के बाहर भेज दी गई हैं। परन्तु अनुभव से यह देखा गया है कि अक्सर दूध से टूटी हुई भैंसों में से लगभग ७५ सैंकडा भैंसें व्यवसाय के लिये निरूपयोगी होती हैं। क्योंकि उनके उस अवस्था (दूध से टूटी हुई) में पालन-पोषण का जो तरीका है वह सदोष है।

भैंसों की उचित व्यवस्था पर ही धन्धे की किफायत

फिलहाल जिस पद्धति से दूध का धन्धा किया जाता है, उस पर से वह कुछ विशेष फायदेमन्द दिखाई नहीं देता। उदाहरण स्वरूप यदि एक भैंस से मिलने वाले दूध और उसके लिये लगने वाले खर्च का हिसाब देखा जाय, तो मालूम होगा कि एक भैंस की लगभग कीमत ७०० रु. है और उसका प्रतिदिन का बम्बई में आने वाला खर्च ३ रु. है। ८ महिने तक लगभग प्रतिदिन वह ५½ से ६ सेर तक दूध देगी और दूध टूट जाने पर उसकी कीमत करीब करीब २५० रुपिये तक मिलेगी। इस हिसाब से आपको ४५० रु. (७००–२५०) ८ महिने में वसूल होने

के लिये प्रतिदिन १॥। रु. क्षयिक मूल्य के नाते (Depreciation) अलग रखने होंगे। अत: रोजाना खर्च ३ रु. + १॥। रु. मिलकर ४॥। रु. हुआ। अब दूध का भाव बारह आने सेर के हिसाब से लगाया जाय, तो भी पहिली ही बार ब्यायी हुई भैंस की पूरी कीमत उसी समय वसूल नहीं हो सकती यह बात बिलकुल स्पष्ट है। अतएव दूध से टूटी हुई भैंस के पालन पोषण का प्रबन्ध उचित तरह से रखना ही होगा और वह पहिले जैसी दूध देने के लिये वापिस मिलनी ही चाहिये। इस उदाहरण से ज्ञात हुआ होगा कि दुग्धव्यवसाय लाभप्रद या नुकसानदेह स्थिति में चलना दूध से टूटी हुई भैंसों के पूर्व स्थिति (जितना पहिले दूध देती थी) में प्राप्त होने पर ही अवलम्बित है।

धन्धा लाभदायक होने के लिये उचित सुविधाएँ चाहिये

यह धन्धा लाभदायक होने के लिये उसके चालक को अत्यंत बारीकी एवं कुशलता से चलना आवश्यक होता है—

(१) पूंजी या मूलधन— इस धन्धे के लिये पर्याप्त पूँजी होनी चाहिये। पर्याप्त पूँजी का मतलब यह है कि दस भैंसें रखनी हो तो पन्द्रह भैंसों के लिये लगने वाली पूंजी का होना आवश्यक है। प्रत्येक भैंस से मिलने वाले दूध का औसत प्रमाण ५½ से ६ सेर तक रखे बिना खर्च का प्रमाण उचित न रहेगा। प्रत्येक भैंस के दूध का प्रमाण इससे कम होने पर अन्त में नुकसान उठाना पड़ता है। दूध का यह औसत प्रमाण कायम रखने के लिये नई दुधारू भैंसें खरीदने का मौका आया तो अधिक पूंजी की आवश्यकता होती है; जिसका इन्तजाम शुरू में ही कर रखना चाहिये। अत: बम्बई जैसे शहर में यह धंधा अल्प पूंजी में नहीं चलाया जा सकता।

(२) जानवरों का चुनाव—बम्बई में डब्बा-पद्धति से भैंसें खरीदने की प्रथा है। एक डिब्बे में आठ भैंसें रहती हैं; जिनमें से दो-तीन तो निश्चित ही कम दर्जे की होती हैं। अत: भैंसें खरीदते समय उनकी परख करने वाले तज्ञ लोगों की मदद से तरुण, उच्च जाति और अधिक से अधिक दूध देने वाली भैंसें ही खरीदना चाहिये। यदि उनके लिये ज्यादा कीमत देनी पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं है। ऐसी ही भैंसें धन्धे की दृष्टि से फायदेमन्द होती हैं; क्योंकि साधारणत: सभी भैंसों का खर्च लगभग एक जैसा ही होता है; परन्तु कम दूध देने वाली भैंस के लिये खर्च तो उतना ही करना पड़ता है; लेकिन वह दूध कम देती है। इसके सिवा उसकी कीमत भी तो तीन बार ब्याने के बाद ही वसूल होती है। इन सब दृष्टियों से ऐसी भैंसें नुकसानकारक ही होती हैं।

(३) खुराक, घास वगैरह—खुराक, घास वगैरह अच्छा और सस्ता मिलाने के लिये बहुत कुशलता से काम लेना पड़ता है। भैंस के खाने-पीने



—"क्यों, कल तो दूध के बदले निरा पानी दे गया?"
—"आँ! मालूम होता है मैं पानी में दूध मिलाने भूल गया!"

के इन्तजाम में बिलकुल अन्तर नहीं पड़ना चाहिये। उसका खाना हमेशा समतोल रहे तथा उचित समय पर और नियमित रूप से मिलता रहे। इस दृष्टि से भी काफी सतर्क रहना होगा।

(४) **देखरेख और व्यवस्था**—भैंस के बीमार हो जाने पर तुरन्त ही दवा-पानी का इन्तजाम करना चाहिये। धंधा करने वाले को नित्योपयोगी घरेलू दवाइयों की जानकारी होना अत्यंत आवश्यक है। उचित समय पर सतर्क रहने से सहसा भैंस के मरने का भय नहीं होता। यदि संक्रामक रोगों जैसे आकस्मिक कारणों को छोड़ दिया जाय तो भैंसों की मृत्युसंख्या का औसत प्रमाण ५ से अधिक नहीं होगा। इस धन्धे में प्रतिदिन दो समय दूध दुहकर उसकी खपत करने की जिम्मेवारी खुद के सिर पर रहती है और दूध तुरन्त ही खराब होने वाली चीज (Perishable Commodity) होने के कारण रोज के काम समय पर एवं व्यवस्थित करने पड़ते हैं। इस धन्धे में सफलता मिलने के लिये उसके चालक को होशियार, मिहनती, और हर एक बात में सतर्क रहने वाला होना नितान्त आवश्यक होता है। योग्य नौकरों का चुनाव करना भी इस धन्धे की एक महत्वपूर्ण बात है। कामचोर, अविश्वसनीय नौकरों को रखने से धन्धा डूब जाने के अनेक उदाहरण बतलाये जा सकते हैं।

(५) **दूध से टूटी हुई भैंसों का इन्तजाम**—इस धन्धे में दुधारु जानवरों के होने का जितना महत्व है, उससे भी अधिक महत्व दूध से टूटे हुए जानवरों के उचित इन्तजाम का है। जानवरों का ठीक ठीक इन्तजाम रखने पर ही धन्धे की सफलता अवलम्बित होती है। यह बात निम्नांकित आँकड़ों पर से अधिक स्पष्ट हो जावेगी। भैंस की मूल कीमत ७०० रु. आठ महिने दूध देकर वह दूध से टूटती है और साधारणतः १५० रु. खर्च करने के बाद वह पुनः दुधारू बनकर गोष्ठ में वापिस आ सकती है। भैंस तरुण हो तो लगभग ४ बार व्याती है और प्रत्येक बार दूध देने के योग्य होने के लिये उस पर ६०० रु. खर्च करने पड़ते है। अर्थात् (७०० रु. + ६०० रु.) १३०० रु. खर्च करने पर वह भैंस (८ माह सरसरी दृष्टि से दूध देने का समय समझ कर) साधारणतः ४० महिने दूध देती है। यदि उसने इतने समय तक दूध दिया तो खर्च की गई रकम पर प्रतिदिन का क्षयिक मूल्य (Depreciation) सिर्फ एक रुपिया-और डेढ़ आना आवेगा। इस प्रकार क्षयिक मूल्य का (Depreciation) मान कम होने पर ही धन्धे में सफलता प्राप्त होना सम्भव होता है। भैंस का दूध देना बंद होने के बाद से लेकर पुनः ब्याने के समय तक उसके पालन पोषण का उचित प्रबन्ध होता हुआ आजतक कहीं भी नहीं देखा गया और इसी कारण यह धन्धा फायदेमन्द होता हुआ नहीं दिखाई देता।

दुग्धपूर्ति की आदर्श योजना कैसी होनी चाहिये

पर्याप्त मात्रा में खालिस तथा सस्ता दूध पुराने के लिये अधिक पूंजी लगाकर ही यह धंधा किया जाना चाहिये। १००० भैंसों की एक आदर्श डेअरी चलाने के लिये कम से कम दस लाख रुपिये की पूंजी होना आवश्यक है। आदर्श गोष्ठ, जगह जगह पर बहते हुए पानी का प्रबन्ध, घास और खुराक के कोठार, दूध लाने-ले जाने के लिये मोटरों की व्यवस्था और घास तथा पानी का इतना अधिक प्रबन्ध होना चाहिये कि उससे १५००-२००० तक दूध से टूटी हुई भैंसों का उचित तरीकों से इन्तजाम हो सके। यह बात सबसे अधिक महत्व की है। इतनी सब सुविधाओं के साथ धन्धा शुरू करने पर ही खालिस तथा पर्याप्त मात्रा में जनता को दूध पुराने का कार्य हो सकता है। बम्बई शहर के दुग्धपूर्ति की समस्या का सन्तोष जनक हल होना उक्त बातोंपर ही निर्भर है।

मेरा दुग्धव्यवसाय

—: लेखक :—
श्री. शि. ना. घाटगे,
आई. डी. डी.

मैंने हिन्दुस्थान सरकार के बंगलोर स्थित "इम्पीरियल डेअरी इन्स्टिट्यूट" से दुग्धविज्ञान का दो वर्ष का कोर्स पूरा कर १९३९ में आई. डी. डी. डिप्लोमा प्राप्त किया। लेकिन ऐन समय पर युद्ध शुरू हो जाने के कारण मुझे अमेरिका जैसे पश्चिमीय देशों में जाकर दुग्धविज्ञान की उच्च शिक्षा तथा अनुभव प्राप्त करने की अभिलाषा छोड़ देनी पड़ी।

मेरे दुग्धव्यवसाय की पार्श्वभूमि

मई १९३९ के "किर्लोस्कर" में "हिंदुस्थान के दूध तथा दुग्धजन्य पदार्थों की सद्यःस्थिति" शीर्षक लेख में मैंने भारत जैसे कृषि प्रधान देश में की जाने वाली दूध तथा दुग्धजन्य पदार्थों की उपेक्षा के विषय में विवेचना की थी। सिर्फ शाब्दिक विवेचना के बाद ही मैंने अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझ जनता को उत्तम दर्जे के खालिस दूध तथा दुग्धजन्य पदार्थों के पुराने का दृढ़ निश्चय भी किया। पूना में इस धंधे के लिये काफी गुंजाइश है ऐसा पता लगते ही मैंने १ जनवरी १९४० को घाटगे डेअरी फार्म के नाम से बिलकुल अल्प प्रमाण पर दुग्धव्यवसाय करना प्रारंभ किया।

मेरे दुग्धव्यवसाय की घटनाएँ

दुग्धव्यवसाय चलाने के जो तरीके आजकल प्रचलित हैं, उनमें से प्रारंभ में मैंने गौलियों से दूध लेकर बेचने के तरीके का ही अवलम्बन किया। इस तरीके पर धंधा करने से प्रारंभ में धंधा शुरू करने के लिये सिर्फ १००० रु. खर्च करने पड़े। मुझे इस पद्धति में हमेशा गौलियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। दूध दुहवाने के लिये मैं स्वयं गौलियों के यहाँ जाया



करता था; लेकिन वे प्रतिदिन कुछ न कुछ कारण बताकर मेरे पहुँचने के पहिले ही एक-दो भैंसें दुह लिया करते थे। ठीक त्यौहारों के दिन तो उनकी भैंसें अवश्य ही कम दूध दिया करती थीं। इससे मेरे ग्राहकों को कभी कभी निराश होना पड़ता था। पूना में करार के अनुसार विश्वसनीय दूध देने वाला सौ में एकाध गौली मिलेगा। इसी कारण वहाँ गौलियों पर अधिक विश्वास रखकर धन्धे को बढ़ना असम्भव-सा हो गया।

इसके बाद मैंने स्वयं भैंसें खरीदकर धन्धे को बढ़ाने का निश्चय किया। शुरू शुरू में मैं व्यायी हुई भैंसें खरीदता और जब वे दूध देना बंद कर देतीं तब उन्हें बेच डालता था। क्योंकि उस समय मेरे पास ऐसी भैंसों के पालन पोषण का कुछ भी प्रबन्ध नहीं था। इस पद्धति से हर बार अधिक पूंजी की जरूरत पड़ने लगी; लेकिन पूँजी के मान से लाभ बहुत ही कम होता था।

मेरे दुग्धव्यवसाय के साथ चलाये हुए सहायक धन्धे

मैंने १९४३ में घोड़ नदी के किनारे साकोरा गाँव की बहुत सी जमीन खरीदी। यह गाँव पूना-नाशिक सड़क पर मंचर गाँव के पास है। हम लोगों ने १५-१६ हजार रुपिया खर्च कर इस जमीन में अनेक तरह के सुधार किये



१९३९ में नई देहली में हुई मवेशियों की अखिल भारतीय प्रदर्शनी में श्री घाटगे जी।



बछड़ों का नाश्ता

और कई सुविधाएँ भी प्राप्त कर ली हैं। आईल एंजिन की मदद से अल्प समय में बहुत सी जमीन सींची जा सकती है। खेती के साथ बतौर सहायक धन्धे के आटा पीसने की चक्की भी शुरू कर दी। हम लोग दुधारू तथा दूध से टूटे हुए जानवरों के पालन-पोषण के लिये अपने ही खेतों पर चारा पैदा करते हैं। जानवरों का गोबर तथा मूत्र जमीन के लिये बहुत उपयोगी होता है। यहाँ हम लोगों ने संतरे, मौसंबी, आम, नारियल और अंगूर के बगीचे लगाये हैं। टर्की, व्हाइट लेगहार्न, आदि जातियों की मुर्गियाँ और बदकें भी हमने यहाँ पर रखी हैं। खेत-बाड़ियों पर इनके खाने के लिये कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। वहाँ की स्वच्छ और खुली हवा से उनके बीमार होने का डर भी कम ही रहता है। तात्पर्य यह कि हम लोगों ने 'मिश्र डेअरी फार्मिंग' की पद्धति का अवलम्बन किया है। मौसम पर कड़बी, चारा आदि इकट्ठा कर लेते हैं। वर्षा ऋतु में जानवरों को चराने के लिये आसपास के चरोखर ले लिया करते हैं। वहाँ के ल्युसर्न, मका जैसे हरे चारे से मवेशियाँ भी सहर्ष पर्याप्त दूध देती हैं। इन खेत-बाड़ियों की देखरेख मेरे छोटे भाई श्री संभाजीराव करते हैं।

मेरे ग्राहक

प्रतिदिन सुबह-शाम साकोरा-फार्म पर दुहा हुआ दूध 'बस-मोटर' से ले जाकर मैं पूना शहर में वितरण करता हूँ। पूना के प्रख्यात कृषि महाविद्यालय के प्रिन्सिपाल डॉ. उप्पल की कृपा से मेरी डेअरी को विद्यालय के होस्टल में रहने वाले लगभग २५०-४०० विद्यार्थियों को दूध देने का काम सौंप दिया गया है। आवश्यक पूर्ति करने की अपेक्षा, माँग की अधिकता के कारण आजकल बहुत से लोगों को निष्कारण ही नाराज कर लेना पड़ता है। लेकिन क्या किया जाय; लाचार हूँ।

धन्धे में आई हुई अड़चनें

इस धन्धे के आरंभ में मुझे बहुत सी अड़चनों का सामना करना पड़ा। जानवरों की खरीदी करने के सम्बन्ध से मुझे कुछ भी अनुभव न था और इसी कारण व्यापारियों ने मुझे एक दो सौदों में अच्छी तरह ठगाया। दूध-वितरण के लिये नियुक्त किये हुए नौकरों ने भी मुझे अच्छा सिखापन दिया। एक-दो बार तो दूध पहुँचाने वाला लड़का स्वयं ही बिल का पैसा वसूल कर चंपत हो गया। दूध बाँटने वाला लड़का अपने साथ एक खाली बाटल लाया करता था और वितरण के लिये दिये हुए दूध के कैन में से दूध निकाल, बाटल में भरकर ले जाया करता था। दूसरा तो उससे भी चालाक निकला। वह तो एक पाव दूध, पाव सेर के माप से पीता हुआ ही पकड़ा गया। इस पर से मैं तो इस मत का हो गया हूँ कि दोनों वक्त (दूध दुहते समय और खुराक निकालकर देते समय) मालिक को स्वयं हाजिर रहना ही चाहिये। कोई भी कार्य नौकरों पर सौंपा कि अपने डूबने का समय आ ही गया समझ लो। कभी कभी तो दूध बाँटने वाला लड़का बिना किसी पूर्व सूचना के गैरहाजिर रह जाया करता था। ऐसी हालत में उसके सब काम मालिक को ही करने पड़ते थे। इस धन्धे में खुद को कष्ट उठाये तथा देखभाल किये बिना काम नहीं चलता। इसी तरह जानवरों के लिये आवश्यक चारा, कड़बी आदि की पैदायश भी अपने ही खेतों में की जानी चाहिये। दूध देना बंद की हुई भैंसों के पोषण का इन्तजाम भी खेतों (Dry Farm) पर ही होना चाहिये। इतनी सब बातों का उचित प्रबन्ध होने पर ही यह धन्धा

फायदेमन्द हो सकता है। स्वयं के कष्ट उठाये बिना इस धन्धे में उन्नति होने की कुछ भी आशा नहीं है। वैसे ही प्रामाणिकता तथा समय की पाबंदी करना धन्धे के लिये बहुत ही महत्व की बात है।

ग्राहक मिलाने के तरीके

जहाँ तक होता है मैं बड़ा ही ग्राहक ढूँढता हूँ, जिससे समय की बचत तो होती ही है, साथ ही वितरण का खर्च भी काफी कम आता है और थोड़ी ही अवधि में अधिक काम हो जाता है। बिल वसूली (दूध की कीमत) भी एकदम हो जाती है; उसके लिये अधिक घूमना नहीं पड़ता। आजकल तो दूध के ग्राहक ढूँढने की आवश्यकता ही नहीं होती। प्रारंभ में बहुत तकलीफ उठानी पड़ी। अब तो यदि दूध अधिक होने लगे तो कौन से नये ग्राहक लगाये जायँ, इसका अनुक्रम नंबर हमारे पास लिखा हुआ रहता है। पहिले पहल जब हमारे पास बहुत सा दूध बच जाया करता था तब मैं खास खास लोगों के यहाँ विनय-पत्र के साथ पाव भर दूध, बतौर नमूने के, भेजा करता था। इसका उनके दिल पर तथा चाय पर भी काफी अच्छा असर होता और वे मेरे ग्राहक बन जाते। बीच बीच में समाचार पत्रों में विज्ञापन देना, पोस्टर्स लगाना या सिनेमा स्लाइड्स बताना आदि तरीकों का भी अवलम्बन करना पड़ा।

अद्यावत ढंग की मिल्कबार योजना

पहिले पहल मैंने ग्राहकों की सुविधा के लिये जंगली महाराज रोड पर एक डेपो खोल रखा था। लेकिन आजकल दूध की बचत न होने से अब वहाँ पर सिर्फ आफीस ही है। इसी जगह पर शीघ्र ही अद्यावत ढंग पर मिल्कबार खोलकर वहाँ दूध तथा दूध से तैयार किये हुए भाँति भाँति के खाद्य पदार्थ और भिन्न भिन्न तरह का सुगंधित दूध, आइस्क्रीम आदि रखने का भी प्रबन्ध किया जाने वाला है।

ग्राहकों की सही शिकायत

किसी भी बड़े ग्राहक को दूध देना प्रारंभ करने के पूर्व मैं स्वयं उससे जाकर मिलता हूँ और अपने दूध की विशेषता एवं महत्व को उन्हें पटा देता हूँ। हमारा तो ऐसा अनुभव है कि हमारा दूध बाजार भाव से थोड़ा महँगा होते हुए भी शुद्ध तथा खालिस माल होने पर ग्राहक उसकी उचित कीमत सहर्ष देता है। आजकल ग्राहक हमसे एक बड़ी शिकायत करते हैं कि हम उन्हें सिर्फ दूध ही दिया करते हैं; मक्खन, घी नहीं देते। आपके इच्छा की पूर्ति हम शीघ्र ही करने का प्रयत्न करेंगे।



देहली की ओर की उत्कृष्ट जाति की भैंस। सन १९३९ में देहली में भरी प्रदर्शनी में इस भैंस को पहिले क्रमांक का पारितोषक मिला था।

हमारे ग्राहक बिल्कुल चुनिन्दे हैं। लगभग प्रत्येक माह की १० तारीख तक सब वसूली हो ही जाती है। ऐसा ही कोई एकाध ग्राहक रह जाता है, लेकिन उसके लिये लाचार हैं।

हम प्रतिदिन दो बार (सुबह–शाम) अपने ग्राहकों को समय पर तथा अबाधत् तरीकों से दूध पहुँचाया करते हैं, (काँच की सीलबन्द शीशियों में घर पहुँचता) जिससे दूध में मिलावट की जाने तथा दूध कम आने के सम्बन्ध से ग्राहकों की कोई शिकायत ही नहीं रहती।

सरकार तथा म्युनिसिपैलिटी से अपेक्षा

सरकार तथा म्युनिसिपैलिटी से हम लोग अनेक सुविधाओं की अपेक्षा करते हैं। फिलहाल जानवरों के रेशनकार्ड पर बिनौले तथा गेहूँ की भुसी मिलती है; पर वह भी पर्याप्त मात्रा में नहीं; अर्थात् कुछ भी न मिलने से, जो कुछ मिलता है वही ठीक है। इससे बहुत सी तकलीफ कम हो गई है। अभी तक तो इसके लिये भी काला बाजार (Black Market) ढूँढना पड़ता था। सरकार को बिनौले और भुसी के समान ही कड़बी के भी वजन से तथा उचित भाव में मिलने का प्रबन्ध अवश्य ही करना चाहिये। जानवरों की खुराक के पदार्थों के उचित भाव पर मिलने का प्रबन्ध करने के बाद दूध के भाव निर्धारित करने में कोई हर्ज नहीं है। किन्तु साथ ही जानवरों की बेहद बढ़ी हुई कीमतों पर भी नियंत्रण करना आवश्यक है। ऐसा करना आसान तो दिखाई देता है; किन्तु है बहुत कठीन, उस पर अमल करना आसान नहीं है; इसमें भी अनेक अड़चनें हैं। आजकल पंजाब, गुजरात आदि अन्य प्रान्तों से दुधारू जानवर खरीदकर लाने के लिये तो इजाजत प्राप्त करने की जरूरत होती है। गैलियों के लिये एक तो यह कठिन ही है और दूसरे उनसे जम भी नहीं सकता। परिणाम स्वरूप उन्हें बाजारों से ही भले–बुरे जानवर खरीद कर अपना धन्धा चालू रखना पड़ता है। देहली की ओर इस धन्धे का मुसलमान व्यापारियों ने मानों ठेका ही ले रखा है और इसी वजह से वे लोग हद से ज्यादा मुनाफा लेकर यह धन्धा करते हुए दिखाई देते हैं। सुशिक्षित लोगों को इस धन्धे की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। शहरों में दूध सस्ते भाव से मिलने के लिये देहातों में होने वाले दूध की खपत शहरों में बढ़ाई जाना आवश्यक है। तथा इसके लिये सरकार को देहातों में सस्ते भाव पर दूध मिलने एवं उसे शहरों में पहुँचाने का प्रबन्ध करना चाहिये। साथ ही अन्य

(पृष्ठ नं. ७२ पर देखिये।)

दुग्धव्यवसाय की सामान्य रूपरेखा

१ दुधारू जानवरों की जातियाँ



लेखक **श्री. ना. वि. शारंगपाणी**

देश की वर्तमान दूध-मक्खन की विकट समस्या का सन्तोषजनक हल करने के लिये हमें दुग्ध-व्यवसाय (सुलभ उत्पत्ति और विपुल दूध) की दृष्टि से ऐसे ही दुधारू पशुओं का चुनाव करना चाहिये, जो पुरा सकते हैं। दुधारू जानवरों में बकरी, भैंस और गाय का ही मुख्यतः समावेश किया जा सकता है।

बकरी

'बकरी का दूध' कहते ही महात्मा गान्धी का स्मरण हो आता है। कई वर्षों से गान्धीजी केवल बकरी का ही दूध पीते हैं। बकरी के दूध में पेपटोन * नामक एक मूल द्रव्य होता है। इस द्रव्य के कारण बकरी का दूध अशक्त, रोगी एवं छोटे बच्चों के लिये बहुत ही लाभदायक होता है।

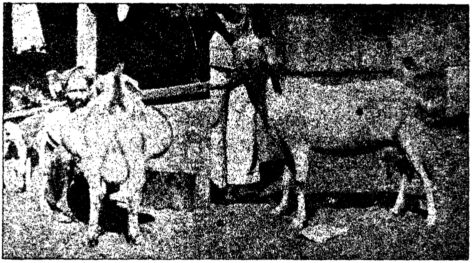
बकरी को 'गरीबों की गाय' कहते हैं। यह कथन बिलकुल सही है। किन्तु दूध का धन्धा करने वाले लोगों का इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं है। उत्कृष्ट जाति की बकरियाँ पालकर उनकी दूध देने की शक्ति को बढ़ाने के लिये उचित प्रयत्न करना आवश्यक है।

बकरी का धारोष्ण दूध पीने में बड़ा ही स्वादिष्ट, रुचिकर और पौष्टिक होता है। परन्तु जैसे जैसे वह बासा होता जाता है, उसके स्वाद में भी अन्तर होता जाता है और इस दूध को गरम करने पर उससे तेज गंध भी आने लगती है।

बकरी के दूध की उपयुक्तता— बकरी एक ऐसा दुधारू पशु है, जो केवल वृक्षों की पत्तियाँ और वनस्पतियाँ खाकर अपना निर्वाह कर सकता है। बकरियाँ बबूल, सैगर, सेमल, हिवर आदि की स्वादिष्ट और पौष्टिक फलियाँ; गूलर, आँवले, बेहाड़े के फल और कई तरह के वृक्षों की पत्तियाँ खाती हैं, जिससे उनका दूध निरोगी, औषधियुक्त, स्निग्ध और रुचिकर होता है। चाय-काफी आदि के लिये भी बकरी का दूध काम में लाया जा सकता है। गाय और भैंस की तरह बकरी को भी प्रतिदिन शाम को थोड़े दाने, चूनी, बिनौले, खली आदि की खुराक देते रहने से बकरी के दूध के दर्जे और दूध देने की क्षमता में काफी अन्तर हो जाता है। साथ ही दूध से आने वाली उग्र बास भी कम होकर दूध रुचिकर हो जाता है। क्षयरोग से पीड़ित लोगों के लिये तो विशेषतः बकरी के दूध की सिफ़ारिश की जाती है।

पहिले पहल एक-दो बार तो बकरी को एक एक ही बच्चा होता है। पश्चात् यदि वह उच्च जाति की हो तो प्रत्येक बार दो दो बच्चे होते हैं और कभी

* एक नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ है, जिसका शरीर में शोषण और पचन बहुत ही जल्दी होता है।



बकरी एक बार में प्रायः दो बच्चे देती है। उत्कृष्ट जाति की बकरी को ३-४ बच्चे भी पैदा हो सकते हैं।

उच्च जाति की 'सुरती' बकरी

दूध हो, वह सब, बिना किसी अड़चन के, निकाल लीजिये ! धन्धे की दृष्टि से इसे एक बड़ी सुविधा ही समझनी चाहिये। बकरी का यह स्वाभाविक गुण धन्धा करने वाले की दृष्टि से बहुत लाभ का है, क्योंकि उसे समय पर नियमित दूध मिलता रहता है। गायें अथवा भैंसें जहाँ एक बार भड़क उठीं या उन्होंने किसी कारण से पान्हा चुराया कि फिर एक बूँद भी दूध मिलने की आशा नहीं की जा सकती। हाँ, उनकी पिछाड़ी की मजा जरूर चखने को मिलती है।

आजकल शहर में गाय अथवा भैंस रखना खर्च, जगह और तकलीफ़ की दृष्टि से प्रायः असम्भव सा ही हो बैठा है। ऐसी अवस्था में यह आशा की जाती है कि दूध का कष्ट थोड़े ही प्रमाण में क्यों न हो, पर कम करने और गाय–भैंस के दूध की कमी की पूर्ति करने में बकरी अवश्य ही सहायक हो सकेगी।

कभी तो तीन तीन भी। खाने पीने का प्रबन्ध ठीक रहने पर उच्च जाति की बकरी बच्चों को पिलाकर दोनों जून में मिलकर सेर–देढ़ सेर दूध दे सकेगी। बच्चे महिने–देढ़ महिने के होने पर वृक्षों की पत्तियाँ, जंगली फलियाँ, फल, चूनी, खली, बिनौला आदि खाकर भी रह सकते हैं।

धन्धे की दृष्टि से बकरी का महत्व

बकरी एक साल में दो बार व्याती है अर्थात् साल में चार पिल्ले देती है। इन पिल्लों को एक साल के बाद बेचने पर आजकल की कीमतों के अनुसार कम से कम ४० रु. से ५० रु. तक दाम जरूर मिलेंगे। अधिकतर बकरों का उपयोग खाने के काम में किया जाता है, जिससे उनकी माँग अधिक होती है और स्वाभाविक ही गाय–भैंस के बनिस्बत बकरियों से शीघ्र ही तथा कभी कभी अपेक्षा से भी अधिक पैसा मिल जाता है।

इस प्रकार बकरी के दूध का धन्धा अत्यन्त लाभदायक और वर्तमान समय में आवश्यक भी है। न तो बकरियाँ गाय–भैंसों की तरह अपना पान्हा चुरा सकती हैं और न उनके पनहाने की बाट ही जोहनी पड़ती है। जहाँ उनके सामने खाने को रखा और पिछले पैर पकड़कर बाँधे कि फिर आँचर में जितना

बकरी का आरोग्यदायक सहवास

स्वास्थ्य की दृष्टि से बकरी का सहवास विशेष रूप से हितकारी है। बकरी के समीप रहने से कई प्रकार के विषैले जन्तु मर जाते हैं। क्षय के रोगियों को तो खास तौर से बकरियों के झुण्ड में सुलाया जाता है।

बकरियों के काफी बड़े झुण्ड को सिर्फ एक ही आदमी आसानी से चरा सकता है। हर एक बकरी–पालक यदि थोड़ा थोड़ा पैसा चरवाहे को दे, तो सभी पालकों की बकरियाँ प्रतिदिन जंगल को जा सकेंगी

और प्रत्येक बकरी के लिये प्रति माह ४–८ आने से अधिक खर्च भी न आवेगा। इससे भी अधिक लाभ तो यह होगा कि बकरी को कई तरह की वनस्पतियाँ खाने को मिलेंगी और जंगल में जाने-आने के परिश्रम तथा जंगल की शुद्ध वायु से बकरी का स्वास्थ्य भी आप ही आप अच्छा रहेगा।

भैंस और उसकी जातियाँ

दुग्ध-व्यवसाय की दृष्टि से भैंस एक बहुत महत्व का प्राणी है। यह पशु यूरोप, अमेरिका, आफ्रिका, आदि देशों में नहीं पाया जाता। पश्चिमी देशों में प्रायः सभी लोग गाय के दूध का ही उपयोग करते हैं। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि अन्य दुधारू पशुओं की अपेक्षा भैंस के दूध में मक्खन की मात्रा काफी अधिक होती है—लगभग दुगनी के बराबर। अतः उपयुक्तता की दृष्टि से भैंस का दूध सर्व श्रेष्ठ है।

जाफराबादी भैंस— भैंस में सबसे बड़ी, विशाल-काय, तगड़ी और दुधारू जाति है जाफराबादी। इस जाति की भैंस की खुराक भी अधिक होती है। अच्छी भैंस ब्याने के कुछ दिन बाद तक बीस-बाईस सेर दूध देती रहती है। इसके दूध न देने का समय लगभग चार महिने होता है। यह जाति विशेषकर काठियावाड़ में और गिरनार की पहाड़ियों पर पाई जाती है।

देहली अथवा मुरहा— जाफराबादी भैंस के बाद दूसरा नम्बर देहली या मुरहा का है। पंजाब के अन्तर्गत रोहतक जिले में इस जाति की पैदायश अच्छी तरह हो सकती है। संयुक्तप्रान्त और सिन्ध में भी यह जाति बहुत बड़े पैमाने पर पैदा होती है। ये भैंसें दिखाई देने में सुन्दर होती हैं। उनके सींग छोटे, बाँकदार-घुमावदार, चपटे और आकर्षक रचना के होते हैं। ये भारत के किसी भी प्रान्त की जलवायु में साधारणतः अच्छी तरह पाली जा सकती हैं और वे दूध भी अधिक देती हैं। ब्याने के बाद उत्कृष्ट भैंसें कुछ समय तक प्रतिदिन १६ से २० सेर तक और मामूली भैंसें १० से १५ सेर तक दूध देती हैं। इनके खाने-पीने-रहने आदि का प्रबन्ध बहुत ही अच्छा रखना पड़ता है। दूध न देने की अवधि ३ या ४ महिने की होती है।

सुरती भैंसें— मुरहा के बाद नम्बर लगता है 'सुरती' भैंसों का। यह जाति सूरत, अहमदाबाद और खेड़ा (गुजरात) जिलों में अधिकतर पाई जाती है। ये भैंसें खूबसूरत, भूरे, अध-भूरे और काले आदि भिन्न भिन्न रंगों की होती हैं। ये भैंसें साधारणतः ८ से १२ सेर तक दूध देती हैं और इनकी खुराक भी कोई विशेष नहीं होती। सिर्फ तीन चार महिने ही ये दूध नहीं देतीं।

इन मुख्य मुख्य जातियों के अतिरिक्त मेहसाणा, देहाती, दक्षिणी और उपर्युक्त तीन जातियों के परस्पर संयोग से पैदा होने वाली कई मिश्र जातियों की भैंसें पाई जाती हैं। अच्छी हिफ़ाजत करने और अच्छी खिलाई देने पर ये सभी जातियाँ यथेष्ट दूध देती हैं।

भैंसा— ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्राचीन काल में जंगली भैंस और जंगली भैंसे को पालतू



उत्कृष्ट जाति की सुरती भैंस



उत्कृष्ट नागपुरी भैंसा

हमेशा स्वच्छ रखना आवश्यक है। उसे दिन में तीन चार बार पेटभर पानी पिलाना चाहिये। पानी पिलाने के बाद उसका सारा शरीर पानी से घिस घिसकर धो डाला जाय और पेटभर दाना-पानी दिया जाय, तो वह यथेष्ट दूध देगी। वरना वह उल्टी चाल चलेगी और यथेष्ट दूध की अपेक्षा यथेष्ट गोबर और लातें ही हाथ लगेंगी। जंगल में वह बहुत दूर तक

बनाकर ही वर्तमान जातियाँ पैदा की गई होंगी। अत्यन्त बीहड़ स्थानों में रहने वाली जंगली भैंसे की एक बड़ी क्रूर जाति है, जो 'गवा' कहलाती है। इस जंगली भैंसे का शिकार करना विशेष पराक्रम का लक्षण माना जाता है। ऐसा ही स्वभाव पालतू भैंसे में भी आंशिक रूप में पाया जाता है। कामेच्छुक भैंसों के पीछे घूमने वाला भैंसा तो भैंसों के समूचे झुण्ड के झुण्ड को अपने पीछे पागल बनाकर मारे मारे घुमता रहता है। चरवाहे को दूध देने वाली भैंसों तक को घर वापिस नहीं ले जाने देता। इससे कभी कभी चरवाहा खतरे में पड़ जाता है। ऐसे क्रूर और उन्मत्त भैंसे की नाक में चमड़े की नथुनी लगाकर किसी अच्छे जबरदस्त चरवाहे के हाथ सौंपना आवश्यक होता है।

भैंसों का सर्वसामान्य स्वभाव

भैंस यह एक अत्यंत नाजुक, सुस्त, आलसी और बड़ी गन्दी जाति है, जो ज्यादा सर्दी, ज्यादा गर्मी या लगातार वर्षा को सह नहीं सकती। भैंस को आप हमेशा गोबर से लिपटी हुई और गन्दे डबरों में बैठी हुई पायेंगे। उसे

चरने के लिये नहीं जा सकती, घर बैठे बिठाये ही सब आराम और सेवा चाहती है। इन्हीं सारी बातों से भैंस पालना और उसकी हिफाजत करना बड़ी तकलीफ़, झँझट और खर्च का काम हो गया है।

उत्तम जानवर कत्ल क्यों किये जाते हैं?

शहरों में दुग्ध-व्यवसाय करने वाले प्रायः सभी लोग उक्त जाति की ही भैंसें पालते हैं। जब तक ये भैंसें खूब दूध देती रहती हैं तब तक उनकी खूब हिफाजत और सेवाएँ की जाती हैं, पर जहाँ उनका दूध देना कम हुआ कि फिर उन्हें बेचने के सिवाय दूसरा



दिल्ली की ओर का भैंसा

चारा ही नहीं रहता। शहर में कम दूध वाली भैंसें पालना घाटे का ही काम है। अतः उसे कम से कम दाम आने पर भी बेच ही डालना पड़ता है और ऐसी भैंसों को खरीदने वाले प्रायः कसाई ही होते हैं। केवल शहरों में इस ढंग से भैंसें पालना नहीं पुराता तथा इसी कारण कई अच्छे जनावरों का निर्दयतापूर्वक कसाई-खानों में संहार होता है। दूध की कमी का यह भी एक मुख्य कारण है। कुछ लोग ऐसी कम दूध देने वाली अथवा दूध न देने वाली भैंसें जब तक वे फिर से गाभिन नहीं रह जातीं पालने का रोजगार करते हैं। यद्यपि ब्याने का समय समीप आने पर इन भैंसों की काफी अच्छी कीमत आती है; परन्तु यह धन्धा बड़े खर्च और जोखिम का होता है। भैंसों की मृत्यु संख्या भी बहुत अधिक होने से इस धंधे का लाभदायक होना अपवादात्मक ही होता है और इसीलिये इसे करने की प्रायः कोई हिम्मत भी नहीं करता।

तीन-चार महिने में ब्याने वाली गाभिन; किन्तु फिलहाल दूध न देने वाली भैंसों को पालने में नुकसान नहीं है। पर यदि भूल कर कहीं ऐसी भैंसें खरीदी गई जो गाभिन न हों, तो फिर वे कितनी भी अच्छी क्यों न हों, फजीहत का कोई ठिकाना न रहेगा! क्योंकि गाभिन होने के समय से लेकर ब्याने के समय तक लगभग साल भर उनके लिये खर्च उठाना पड़ता है, जो घाटे में डाल देता है। अतः भैंसों का ग्राहक कसाई के सिवाय खोजने पर भी कोई नहीं मिलता।

संकुचित मनोवृत्ति— दुग्ध-व्यवसाय करने वाला इस डर से कि कहीं भैंस का दूध घट न जाय, कामासक्त होने पर भी भैंस को भैंसे के पास नहीं ले जाता; क्योंकि एक बार गाभिन होने के बाद उन्हें कितनी ही खिलाई क्यों न दी जाय, पर उनके दूध देने का प्रमाण तनिक भी नहीं बढ़ता। उल्टे एक देढ़ माह के बाद दूध क्रमशः घटता ही जाता है। दूध वाला ठीक यही बात नहीं चाहता और भैंसों के कामावस्था की ओर जानबूझ कर ध्यान नहीं देता। यही नहीं बल्कि



—"क्यों रे, ए दूधवाले! दूध में पानी मिलाता है? देख मुझे जोरों का जुकाम हो गया है।
—"अच्छा मालिक कलसे गरम पानी मिलाया करूंगा!"

वह इस कोशिश में रहता है कि वह गाभिन ही न होने पावे और साल-देढ़ साल के बाद जहाँ उनका दूध घटने लगा कि तुरन्त कसाई को बेच देता है। इसी संकुचित मनोवृत्ति के कारण अच्छी जाति के पशु हम हमेशा के लिये हाथ से खो बैठते हैं। भला इस तरह उत्तम पशुओं का संहार होते रहने से देश की दुग्ध-समस्या का सन्तोषजनक हल होना कैसे संभव हो सकता है? अतः इस मनोवृत्ति को हमें दूर करना ही होगा।

भैंस के बछड़ों की उपेक्षा— शहरों में दुग्ध-व्यवसाय करने वाले लोग भैंस के बछड़ों की इस सीमा तक उपेक्षा करते है कि उसको एक प्रकार से हत्या ही कहना होगा, शहर में दूध महँगा होता है। इसीलिये वे पैसों की लालच से बछड़ों को इतना कम पिलाते हैं कि बेचारों को महिने-देढ़ महिने के अन्दर ही अपना रास्ता नापना पड़ता है। एक तो वैसे ही भैंस की जाति बड़ी नाजुक होती है, तिस पर बचपन में इस तरह का निर्दयतापूर्ण व्यवहार, फिर भला

वे जीएँ किसके भरोसे ? अच्छा, उन्हें मिलनेवाला दूध भी इतना भारी और अनैसर्गिक होता है कि वे उसको हजम ही नहीं कर सकते। चूंकि अधिक दूध की लालच से ग्वाला भैंस की खुराक बढ़ाता चला जाता है और उसका असर होता है दूध पर। यद्यपि ग्राहकों की दृष्टि से दूध की श्रेणी बढ़ती है; परन्तु बेचारे बछड़ों के लिये वह अधिकाधिक हानिकर ही होता चला जाता है। इस दूध पर, जो मुश्किल से हजम हो सकता है, भला बछड़े कितने दिन जीवित रह सकते ? भैंस के पड़े इतने नाजुक होते हैं कि उनको नपे–तुले दूध की ही आवश्यकता होती है। जहाँ थोड़ा ही दूध ज्यादा हुआ तो हजम नहीं होता और कम हो गया तो कमजोरी पैदा कर देता है। अतः बचपन में ही उनकी काफी हिफाजत करनी पड़ती है, तब कहीं आगे चलकर उनमें से कुछ पड़े हाथ लगते हैं। हर आठ दिन के बाद उन्हें थोड़ा सा अलसी का तेल पिलाना जरूरी होता है। सफाई की दृष्टि से उनकी जगह दिन में ४।५ बार बदलनी चाहिये। एक महिने के बाद उन्हें प्रतिदिन नियमित रूप से ताजा मठा पिलाया जाय। बछड़ों के शरीर पर जूँ हो जाते हैं, उनका बार बार इलाज करना जरूरी होता है। परन्तु "इतनी झंझट कौन करे और क्यों ?" इसी मनोवृत्ति से बछड़ों की उपेक्षा की जाती है। परिणाम स्वरूप आज हम पर यह दुग्ध–दुर्भिक्ष का प्रसंग आ पड़ा है।

भैंसों की हिफाजत और देखभाल

गर्मी के दिनों में ठण्डे रहने वाले गोष्ठ, पीने के लिये साफ और ठण्डे पानी का इन्तजाम तथा दोपहर में धूप के समय पानी में लेटे रहने का प्रबन्ध आदि सुविधाएँ भैंसों के लिये होना अवश्यक है। इसी तरह कड़ी ठंड के दिनों में गरमाहट रखने वाले बन्द गोठे होना भी आवश्यक है।

भैंसों का चारा–यह धारणा कि भैंस की दाढ़ में दूध रहता है, बिलकुल सच है। भैंस को जितनी अधिक खिलाई और आराम मिलेगा उतना ही वह अधिक दूध देगी। यह बात सत्य है कि भैंस अत्यन्त खाऊ प्राणी है, पर वह खाने के मान से दूध भी तो कुछ कम नहीं देती ! हाँ, कुछ भैंसें ऐसी भी होती हैं जो खाती तो अधिक हैं; पर दूध बिलकुल ही कम देती हैं। ऐसे जानवर केवल मोटे ताजे होते हैं; परन्तु शरीर में चर्बी बढ़ जाने से वे दूध के लिये बेकाम होते हैं। अधिक दूध देने वाली अच्छी जाति की भैंस यद्यपि खावेगी अधिक पर फुटबाल–जैसी गोलमटोल कभी न बनेगी। ऐसे जानवर प्रायः त्रिकोणाकृति रहते हैं। इसका कारण यह है कि वे जितना खाते हैं; उसका अधिकांश भाग दूध बनने में ही खर्च होता है, मेद–वृद्धि अधिक नहीं हो पाती।

भैंस को स्टॉल–फीडिंग भाता है; तो गाय को जंगल में घूमना पसन्द आता है। भैंसों को नदी-नाले के किनारे हरियाली में तथा नरम चारे के जंगल में ही चरने के लिये छोड़ना चाहिये। पहाड़ियों पर चढ़ना, उतरना, चट्टानों और पथरीले जंगलों में घूम घूम कर चरना उनसे नहीं होता। यदि ऐसा परिश्रम करना ही पड़ा, तो तुरन्त उनका दूध घट जाता है और वे कुछ दुबली भी हो जाती हैं। उत्तम चारे वाले जंगल से चरकर आने के बाद भी उन्हें घर को बढ़िया मुलायम हरी घास यथेष्ट मात्रा में देना चाहिये। भैंसों को विशेष कर ल्यूसर्न, गन्ने की हरी पत्ती, पीपल आदि की पत्तियाँ; कैल, काँदी, कुंदा आदि कई प्रकार की हरी घास, हरी कड़बी आदि हरा चारा खिलाने से वे यथेष्ट दूध देती हैं।

भैंसों को सब चारा एकदम इकट्ठा न दिया जाय। एक बार में ८ या १० पौण्ड देना चाहिये। उतना खा जाने पर पुनः दुबारा दिया जाय, जिससे चारा बेकार नष्ट नहीं होता और जानवरों की रुचि भी बनी रहती है। एकदम सब का सब चारा डाल देने से भैंसों को बोझ–सा मालूम होता है। और उनकी भूख दब जाती है। भैंस को उक्त चारा प्रति–दिन कम से कम ५० पौण्ड चाहिये; भैंस बड़ी हो तो ७५ पौण्ड तक चारा दिया जावे। चारे का प्रबन्ध यदि हमेशा इसी तरह रहा, तो एक भैंस अपनी जिंदगी

में १६ बछड़े आसानी से दे सकती है (धोखे से अकाल मृत्यु हो जाय तो दूसरी बात है) और प्रत्येक बार ब्याने के बाद दूध भी यथेष्ट देती है। परन्तु उत्तम चारे के अभाव में व्यवसाय के गाड़े का उलटा चलना ही अधिक संभव होता है।

भैंस की खुराक— मक्खन की दृष्टि से भैंस अधिक उपयोगी पशु है। उसका दूध गाढ़ा होने से उसमें मक्खन का अंश अधिक रहता है। अच्छी जाति की भैंस को बिनौले की खुराक मिलने पर उसके एक सेर दूध से आठ तोले मक्खन मिल सकता है; परन्तु सिर्फ चारा अथवा चूनी, खली आदि मामूली खुराक से मक्खन का प्रमाण बहुत ही कम हो जाता है। भैंस को बिनौला खिलाने पर उसके दूध से मक्खन अधिक निकलता है और साथ ही भैंस भी हृष्टपुष्ट रहती है। ब्याने के बाद भैंस को बिनौला खिलाने से वह स्वस्थ रहती है और उसकी ब्याने की-क्षमता भी बढ़ती है (ज्यादा बच्चे देती है)। ऐसा अनुभव किया गया है कि बिनौला भैंस के लिये सबसे उत्कृष्ट खुराक है।

भैंस के खुराक की मात्रा— भैंस की खुराक दुध दुहने के बारह घण्टे पहिले भिगोकर रख देना चाहिये। भिगोई हुई खुराक भैंस को ज्यादा फ़ायदा पहुँचाती है। मामूली आठ-दस सेर दूध देने वाली भैंस को १ सेर बिनौला, १ सेर खली (मूँगफली की), १ सेर मिश्र चूनी (चना, तुअर, मूँग, उड़द वगैरह) और उसमें २५ तोले नमक, २५ तोले तेल, १ तोला हल्दी-इतनी खुराक एक बार में देनी चाहिये। इन सब चीजों के १२ घण्टे तक पानी में भीगने के बाद भैंस की बढ़िया खुराक बन जाती है। दूध दुहते समय दोनों जून यह खुराक खिलाई जावे। दूध दुहने के पूर्व भैंस को पानी पिलाया तथा नहलाया जाय। अधिक ठंडी के दिनों में शाम को दूध दुहने के पूर्व नहलाया न जावे।

भैंस के सर्वसामान्य रोग और उनके इलाज

माता (Rinderpest)—यह बीमारी भैंसों में तुरन्त फैलती है और समय के अन्दर ही उचित उपाय न किया गया तो भैंसों के झुण्ड के झुंड आँखों देखते नाम-शेष हो जाते हैं। ऐसे समय डॉक्टर के द्वारा अपनी भैंसों को टीका लगवा लेना चाहिये। संक्रामक रोगों के शुरू होते ही, फिर वह किसी भी तरह का क्यों न हो, अपनी भैंसों को खास पनघट पर या कुए से निकाला हुआ ही पानी पिलाना चाहिये। यह एक बड़ी जरूरी और महत्व की बात है। ऐसे स्थानों पर, जहाँ सभी जानवर पानी पीते हैं अपने जानवरों को, संक्रामक रोग के दिनों में, पानी मत पिलाओ। माता (रिंडरपेस्ट), ब्लॅक कॉरटस्, मुँह तथा पैर का पकना आदि अनेक संक्रामक रोग हैं, जो एक दूसरे का जूठा पानी पीने पर शीघ्रता से फैलते हैं। इस बात का महत्व गाँवों के लोगों को मालूम न होने से वे अपना-अपना अलग पनघट नहीं

रखने। फलतः स्वाभाविक ही इन रोगों के फैलने में मदद पहुँचती है। छोटे नदी-नालों का पानी बहता नहीं रहता और जहाँ डबरों में पानी जमा रहता है, वहीं जाकर सभी जानवर पानी पीते हैं, उसीमें बैठते हैं, मलमूत्र भी विसर्जन करते हैं तथा बेचारे जानवरों को साल में कई दिन तक ऐसा ही गन्दा पानी पीना पड़ता है, जिससे संक्रामक रोग फैलते हैं। प्राकृतिक रूप से देखा जाय तो पशुओं को बीमारी होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता। पर पानी आदि के सम्बन्ध में मनुष्य को जैसी सावधानी रखनी चाहिये वैसी वह नहीं रखता और इसीसे ये रोग फैलते हैं।

लक्षण और उपाय-जानवर को माता की बीमारी होने पर लगातार पतले दस्त होते हैं और पानी जैसे पतले गोबर से बड़ी दुर्गन्ध आती है। कभी कभी गोबर लाल और खून-भरा रहता है। जानवर कुछ भी खाते पीते नहीं और दो-तीन दिन में ही मर जाते हैं। इस रोग की आशंका होते ही कोलुरा, बकान, बाम्बू और नीम की पत्ती समभाग पीसकर उनका ४० तोले रस निकालो, ज्यादा रस उतरने के लिये उसमें थोड़ा सा पानी भी मिलाओ। इस रस में भिगोकर पीसी हुई मूँग की दाल २० तोले और मठा ४० तोले मिलाकर हर तीन घण्टे के बाद ४० तोले की एक एक खुराक जानवर को पिलाओ। डॉक्टर की मदद मिलने तक चुपचाप न बैठकर यह उपाय चालू रखो और डॉक्टर के आने पर तुरन्त उसे सौंप दो। यह रोग अत्यन्त संक्रामक है। अतः इसके लिये जानवरों की जगह एकदम बदल देना ही एकमात्र उपाय है। डॉक्टरी इलाज भी इस रोग पर रामबाण नहीं है।

मुँह पकना--इस बीमारी के होने पर भूल कर भी स्वस्थ जानवर को रोगी जानवर का जूठा पानी न पिलाया जाय। इस बीमारी में जानवर के मुँह में छाले पड़ जाते हैं और जीभ पर काँटे आते हैं। अतः मक्खन, नींबू का आचार, हल्दी और नमक एक में मिलाकर मुँह के अन्दर और जीभ पर सुबह-शाम जोरों से मलना चाहिये। गूँधे हुए आटे के गोले में दो-तीन भिलावें और एक प्याज कुचल कर मिलाओ और यह गोला भैंस के मुँह में गले तक हाथ डालकर सीधा अन्दर छोड़ दो। जब तक आराम नहीं हो जाता, ये दोनों इलाज करते रहो।

घाव की दवा— वर्षा के दिनों में भँवरों के काटने से भैंसों को जगह जगह पर जख्में हो जाती हैं। इन घावों को सावधानी से साफ़ धोकर उन पर गुड़-चूने का लेप अथवा अर्जुन पेड़ के सूखे छिल्के का कपड़ छान किये हुए चूर्ण का लेप लगाओ। मिट्टी का तेल, फिनाईल और खेत की काली मिट्टी पानी में मिलाकर उसका लेप करो या घाव पर डामर अथवा अण्डी का तेल हल्दी के साथ मिलाकर चुपड़ो। इनमें से किसी भी दवा से घाव तुरन्त भर जावेगा।

भारतीय गौओं की दुधारू जातियाँ

दुधारू पशुओं में गाय की समता करने वाला एक भी पशु नहीं है। धन्धे की दृष्टि से भैंस या बकरी की अपेक्षा गाय अवश्य ही अधिक लाभदायक है।

पूज्य आचार्य विनोबाजी भावे ने इस विषय में पौनार में कितने ही सफल प्रयोग किये हैं। उनके और हमारे अनुभव बिलकुल एक-से ही हैं। प्रयोग से सिद्ध हो चुका है कि गाय के दूध की समस्या यद्यपि बिकट मालूम होती है; किन्तु कुछ नियमित रूप से प्रयत्न करने पर वह हल भी हो सकती है, इस में कोई सन्देह नहीं। पर इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि यह धंधा उच्च जाति की दुधारू गौओं की पैदायश बढ़ाकर अनुभवी लोगों की सलाह लेते हुए ही करना चाहिये।

सिन्धी गाय— सिन्ध में कराँची के इर्दगिर्द यह जाति पाई जाती है। मुख्यतः इसका रंग तेज लाल तथा काला-सा और सफेद भी होता है। इस के दो बछड़ों के पैदा होने में १३-१४ महिनों का अन्तर रहता है। इनके दूध न देने का समय २-३ महिनों से अधिक नहीं होता। ऐसे भी उदाहरण पाये जाते हैं कि इस जाति की कुछ गौओं ने १३-१४ महिनों में १०,००० पौण्ड दूध दिया है।

माँटगोमरी (शाहीवाल) जाति— पंजाब के अन्तर्गत माँटगोमरी जिला इस जाति की गाय का मूल-स्थान है। यह गाय प्राय: लाल-सफेद रंग की होती है। सींग छोटे और बोथरे होते हैं; जबड़ा चौड़ा होता है। इसकी दो सन्तति में १४-१५ महिनों का अन्तर होता है और वे सिर्फ ३-४ माह तक दूध नहीं देती। इस जाति की कुछ गौओं ने १६,००० पौण्ड तक दूध दिया है। दूध देने में भारत की यह पहिले नम्बर की जाति है।

हंसी हिसार और हरियाना—इनका मूल-स्थान पंजाब का हिसार जिला है। हिसार जाति की गौएँ प्राय: कोसे के रंग की होती हैं। कद में खूब ऊँची और डौलदार होती हैं। दो सन्तति के दरमियान १२-१४ महिनों का अंतर होता है और दूध न देने का काल केवल २-३ महिने का ही होता है।



—श्रीमती शारंगपाणी शाहीवाल जाति की गाय का दूध दुह रही हैं।

यह जाति लगभग शाहीवाल जाति के मुकाबले की ही होती है। दो सन्तति की उत्पत्ति के दरमियान (१२-१४ महिने में) बारा हजार पौण्ड तक दूध दे सकती हैं।



श्री. ना. वि. शारंगपाणी और उनकी हरियाना जाति की सुंदर गाय।

गीर अथवा सोरटी—यह जाति जूनागढ़ रियासत में और गिरिनार की पहाड़ियों में पाई जाती है। काठियावाड़, बड़ौदा रियासत आदि अनेक स्थानों में इस जाति का प्रसार हुआ है। ये गौवें भी दूध के लिये अच्छी होती हैं। लगभग ८००० पौण्ड तक दूध दे सकती हैं। इन जातियों के अतिरिक्त काँक्रेज-डांगी, थारपारकर, खिलार, अमृतमहल, देवनी आदि अन्य जातियाँ भी हैं, पर वे मामूली दूध देती हैं।

विलायती नस्ल की अच्छी गौवें

होलस्टिन (Holstein)—इस जाति की गाय एक साल में ३०, ३१८ पौण्ड दूध देती है।

गॉरन्सी (Guernsey)—इस जाति की गाय साल में १८,४५८ पौण्ड दूध देती है।

जर्सी (Gersey) —इस जाति की गाय साल में १७,२५३ पौण्ड दूध देती है।

२ उन्नति-प्राप्त गो-सन्तति की उत्पत्ति (Breeding)



शारंगपाणी जी की डेअरी का उत्कृष्ट जाति का गौलाऊ सांड

भारतीय गौओं और भैंसों की अपेक्षा पश्चिमी देशों की [यूरोप, अमेरिका, हालैण्ड आदि] गौवें दुगना-तिगुना ज्यादा दूध देती हैं। प्रत्येक गाय के दूध का औसत प्रमाण भी काफी ज्यादा रहता है। उत्कृष्ट जाति की दुधारू गौओं की संख्या हमारे देश में पश्चिमी देशों की अपेक्षा बहुत ही कम है और हलकी जाति की गौएँ बहुत ज्यादा हैं।

वर्तमान दुधारू जातियों की उत्पत्ति कैसे हुई ?

प्राकृतिक रूप से गौओं का इतना दूध देना असम्भव है। वास्तव में उनका दूध केवल उनके बछड़ों के लिये ही पर्याप्त होता है। आजकल गौवें इतना अधिक दूध देती हैं कि उतना बछड़ों को पच नहीं सकता। इतना दूध पीने पर बछड़ा दो दिन के अन्दर ही पेट फूलकर मर जायगा! गौओं की दुग्धक्षमता की वृद्धि मनुष्य के प्रयत्नों का ही फल है। उत्तम दुधारू गौओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में गत डेढ़ सौ वर्ष में पश्चिमी देशों में बहुत अधिक अनुसन्धान कार्य किया गया है। सैकड़ों प्रयोग करने के पश्चात् उन्होंने वर्तमान दुधारू जातियाँ उत्पन्न की हैं। हमारे देश में अभी तक इस दिशा में कुछ भी कोशिश नहीं हुई। उच्च श्रेणी के पशुओं की उत्पत्ति करने की दृष्टि से भारत की जलवायु बहुत ही अनुकूल है। इतना ही नहीं कई प्रान्त तो ऐसे हैं जो दुधारू पशुओं की उत्पत्ति करने के लिये अपनी सानी नहीं रखते! यदि कुछ कमी है तो सिर्फ भरसक उचित प्रयत्न करने की। दुधारू गौवें उत्पन्न करने का एक अलग विज्ञान ही बना हुआ है, जो अनुभव और प्रकृति-सिद्ध नियमों पर स्थित है। तदनुसार उचित मार्गप्रदर्शन हो तो गोपालन और गोसंवर्द्धन कार्य में हमें निस्सन्देह भारी सफलता मिल सकती है। अतः हमें निम्न वैज्ञानिक सिद्धान्तों से काम लेना होगा।

वंश-सुधार (Heridity)—प्रकृति का नियम है कि आप "जो बोएँगे सो पाएँगे"। इस नियम के अनुसार जिस दर्जे का साँड़ और जिस दर्जे की गाय रहेगी, उसी दर्जे का बछड़ा भी पैदा होगा। पर इससे भी बढ़कर प्रत्यक्ष गाय से ऊँचे दर्जे की विपुल दूध देने वाली अधिक उँचाई की और ज्यादा मजबूत (अर्थात् माँ से बेटी सवाई!) सन्तति पैदा करना सम्भव है।

यह अनुभव किया गया है कि मिश्र जाति के संयोग द्वारा (Cross-Breeding) पहिले पुश्त की औलाद में उत्तम जाति के साँड़ के ५० प्रतिशत गुण आ जाते हैं। उस पीढ़ी की सन्तति को फिर दूसरा अच्छा उन्नति-प्राप्त (Pedegreed) साँड़ मिल जाने पर दूसरी पीढ़ी में ५० प्रतिशत दूसरे साँड़ (Father) के और २५ प्रतिशत पहिले साँड़ (Grand-father) के मिलकर कुल ७५ प्रतिशत गुण आ जाते हैं और इस संतति को उत्तम साँड़ मिल जाय तो तीसरी पीढ़ी में इस तीसरे साँड़ (Father) के ५० प्रतिशत, दूसरे साँड (Grand-father) के २५ प्रतिशत और पहिले साँड़ (Great-Grand-father) के १२½ प्रतिशत के अनुपात में गुण आते हैं। इस अनुपात में प्रत्येक पीढ़ी की औलाद में सुधार होते होते चौथी या पाँचवीं पीढ़ी उत्कृष्ट गुणधर्म की निर्माण होती है। यही तरीका

'वंश-सुधार' कहलाता है, जिसके द्वारा गौओं का पूरा झुण्ड का झुण्ड उच्च कोटि का बन सकता है। पहिला साँड यदि उत्तम श्रेणी का हुआ तो उसके द्वारा पैदा होनेवाली सन्तति में २५ वर्ष तक (कम से कम पाँच पीढ़ियाँ) उसके गुणधर्म कम या अधिक अंश में जरूर पाये जाते हैं। वंश-सुधार के कार्य में उत्तम गाय का भी उतना ही महत्त्व है जितना उत्तम साँड का होता है। उत्तम जाति की गाय भी अपने गुणधर्म चार-पाँच पीढ़ियों को (२५ वर्ष) बराबर देती चली जाती है।

गत छः वर्ष के युद्ध-काल में अच्छी जाति की लाखों गौओं का ब्रिटिश व अमेरिकी फौजों के खाने के लिये कत्ल किया गया है। आजकल अच्छे पशुओं का अकाल पड़ गया है। गाय का दूध पीने की बात तो दूर रही, आँखों से देखने के लिये भी उनका मिलना कठिन हो गया है। इस दुर्दशा का भी यही कारण है। यद्यपि इस भीषण पशु-संहार को रोकना हमारे वश की बात नहीं है; किन्तु हम अपने गोधन की क्षति-पूर्ति के लिये कुछ न कुछ तो अवश्य कर सकते हैं। शास्त्र-शुद्ध पद्धति से काम लेते हुए उत्तम गोधन निर्माण करने के कार्य में हमें कमर कसकर जुट जाना चाहिये।

साँड का चुनाव

प्रायः ५० गौओं के झुण्ड को एक साँड पर्याप्त होता है। अपना खरीदा हुआ साँड वास्तव में उत्कृष्ट है अथवा नहीं, यह केवल ऊपरी रँग ढँग, टीमटाम, डौल या दिखावटी तगड़ेपन के देखने से ही नहीं चलेगा, अपितु उसकी वंश-परम्परा का निरीक्षण करना ही अधिक महत्व का है। हमें पता लगा लेना चाहिये कि क्या इस साँड का बाप अधिक दूध देने वाली गाय से पैदा हुआ था आदि। कम से कम चार-पाँच पीढ़ियों तक तो उस साँड की वंश-परम्परा बिगड़ी हुई नहीं होनी चाहिये। इस प्रकार के उच्च वंश का ही साँड अपनी गायों के लिये चुनना चाहिये। पर ठीक इसी महत्वपूर्ण बात की ओर हम दुर्लक्ष करते हैं, क्योंकि हमारे देश में वैज्ञानिक ढँग पर चलने वाले संवर्द्धन-केन्द्र हैं ही नहीं। इस विषय में सरकारी फार्मों पर कुछ थोड़ा बहुत प्रयत्न होता है और उसीका फल है कि गत पाँच-पचीस वर्षों में लोगों का ध्यान इस ओर गया हुआ दिखाई देता है। परन्तु सिर्फ इतने से ही काम न चलेगा। साँड की वंश-परम्परा का पूरा रिकार्ड रखना बहुत ही आवश्यक है; अन्यथा उसकी पात्रता का ज्ञान होना लगभग असम्भव ही है।

साँड की पात्रता की पहिचान

काम में लाये गये साँड़ों की पुत्रियाँ ऊँचाई, रंग, रूप और खास कर दुग्ध-क्षमता में अपनी माँ से भी बढ़कर एवं अधिक दूध देनेवाली निकलीं, तो समझना चाहिये कि साँड अच्छा है। इसके विरुद्ध परिणाम दिखाई दे तो साँड को तुरन्त बदल देना



शारंगपाणी जी अपने हिसार जाति के साँड के साथ
(इस साँड पर इनाम मिला है)



अपर शिलांग फार्म का ' गोल्डिकोट एकिलिस' नामक ब्रिटिश फ्रेशियन साँड़.

लग जाते हैं। कभी कभी यह अवधि स्वाभाविक ही घट भी सकती है या प्रयत्नपूर्वक घटाई भी जा सकती है। इस विषय में " युनिवर्सिटी ऑफ् मिसुरी " ने बहुत कुछ अनुसन्धान कार्य किया है। वहाँ जर्सी जाति की चन्द गौओं पर निम्न प्रयोग किये गये।

चन्द विलायती प्रयोग

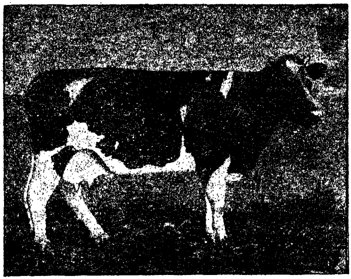
शुरू में ' मिसुरी रायटर ' (Missouri Rioter) नामक साँड़ का एक जर्सी गाय से

चाहिये। पश्चिमी देशों में इस दृष्टि से साँड़ का पूरा रिकार्ड (छोटी बड़ी सभी जानकारी) रखा जाता है। इससे दुधारू जाति पैदा करने के प्रयत्नों में अत्यधिक सुविधा होती है। उच्च वंश का साँड़ प्रायः उत्तम और कार्यक्षम निकलता ही है।

साधारणतः प्रति तीन वर्ष के बाद साँड़ बदल देना चाहिये। यूरोप-अमेरिका में एक साँड़ से एक-दो साल ही काम लिया जाता है, पर यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि साँड़ की क्षमता जब उससे प्राप्त ऊँची सन्तान पर से ही निर्धारित करना है, तब फिर उस सन्तान के जवान होने के पहिले ही साँड़ को बदल देने से क्या लाभ ?

साँड़ की पुत्री की सन्तान अपनी माता की अपेक्षा अच्छी है या बुरी, इसका पता लगाने के लिये विलायत में कम से कम पाँच साल की अवधि लगती है। हिन्दुस्थान में इसकी पहिचान के लिये सात साल लगते हैं। उसमें भी गाय के पहिली बार ब्याने में ही उसके दूध की मात्रा का पता लग जावेगा यह निश्चित नहीं है। दो बार ब्याने के बाद कहीं उसके दूध देने की क्षमता का ठीक ठीक ज्ञान होता है, जिसके लिये पाँच-सात साल सहज ही

संयोग कराया गया। इस साँड़ की माँ के बारे में कुछ भी पता न था; किन्तु उसका बाप अच्छी जाति का था। साँड़ की पुत्री ने एक साल में ४३८१ पौण्ड दूध दिया, जिससे २१६ पौण्ड मक्खन निकला। उसकी माँ ने ५३८० पौण्ड दूध दिया, जिससे २३४ पौण्ड मक्खन मिला। इस पर से माँ की अपेक्षा पुत्री हलकी श्रेणी की समझी गई और वह साँड़ उत्तम नहीं समझा गया। फिर ह्यूगोरोटस (Hugorotus) नामक साँड़ से काम लिया। इस साँड़ की पुत्री ने ४५७६ पौण्ड दूध दिया, जिससे २४५ पौण्ड मक्खन निकला। उसकी माँ ने ४९६९ पौण्ड दूध दिया और उससे २३१ पौण्ड मक्खन प्राप्त हुआ। इसमें भी माँ की तुलना में पुत्री कम दर्जे की ही साबित हुई। पुनः साँड़ बदल दिया गया और लोर्न ऑफ् मेरिडेल (Lorne of Meridale) नामक साँड़ का उपयोग किया गया। उसकी पुत्री ने ५९६९ पौण्ड दूध दिया, जिससे २८७ पौण्ड मक्खन मिला। माँ ने ४५५९ पौण्ड दूध दिया और उससे केवल २२१ पौण्ड मक्खन मिला। यह साँड़ पहिले दोनों साँड़ों से बहुत ही अच्छा माना गया; क्योंकि उसकी पुत्री अपनी माँ की अपेक्षा बहुत अच्छी साबित हुई।



विपुल दूध देनेवाली कैंब्रिज की नान्दिनी

उससे अधिक दूध और मक्खन मिला। बाद में 'मिसुरी रायटर नं. ३' (Missouri Rioter No. 3) नाम के साँड़ की बारी आई। इस साँड़ की माँ अपने झुण्ड की गौओं में सबसे अधिक दूध देने वाली पहिले नम्बर की गाय थी। इस साँड़ की पुत्री द्वारा प्राप्त ८००५ पौण्ड दूध से ३८४ पौण्ड मक्खन मिला। उसकी माँ ने केवल ४७७५ पौण्ड ही दूध दिया, जिससे मक्खन २३८ पौण्ड से अधिक नहीं मिला। अर्थात् यही साँड़ सर्व श्रेष्ठ माना गया। उसकी पुत्री अपनी माँ की अपेक्षा लगभग दुगनी अच्छी निकली। इसके बाद और भी ४-५ साँड़ लाकर प्रयोग किये गये; परन्तु "रायटर नं. ३" की सानी का साँड़ फिर नहीं मिला। अतः साँड़ के गुणधर्मों का पूरा पूरा पता लगाने के पूर्व ही उसे निम्न कोटि का समझना उचित न होगा। साँड़ बदलना ही हो तो एक गौशाला का साँड़ दूसरी गौशाला में और वहाँ से तीसरी गौशाला में भेजकर उसका सम्पूर्ण विवरण (रिकार्ड) रखना चाहिये और उस पर से जो साँड़ सबमें उत्तम जान पड़े उसीसे सभी गौशालाओं को लाभ उठाने की प्रथा चालू करनी चाहिये। ऐसे उच्च श्रेणी के साँड़ से काम लेकर अधिक से अधिक समय तक पूरा पूरा फायदा उठाना आवश्यक है।

अच्छी सन्तान (Breed) पैदा करने के तरीके

साधारणतः तीन प्रकार से अच्छी सन्तान पैदा की जा सकती है—

(१) पिता और पुत्री का संयोग (Mating) कराना। इस तरीके से पिता के तीन चौथाई गुण पुत्री में दिखाई देंगे। यदि साँड़ बहुत ही ऊँची जाति का हो तो उसके अधिक से अधिक गुण प्राप्त करने की दृष्टि से पिता-पुत्री का संयोग कराना चाहिये।

(२) पुत्र और माँ का संयोग कराना। इससे प्राप्त सन्तान में माँ के तीन चौथाई गुण आ जायेंगे। जब आपको माता के गुणों की अधिक आवश्यकता महसूस हो, तब पुत्र और माता का संयोग कराया जाय।

(३) बहिन और भाई का संयोग कराना। इस संयोग द्वारा उत्पन्न होने वाली सन्तान में दोनों के केवल



"रायबाग" (King's-wood) कैंब्रिज



मि. जोसेफ एडवर्ड्स्, केंब्रिज
(गोसंवर्धन की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के संशोधक)

आधे आधे गुण आते हैं। गुणों का प्रमाण बढ़ाने की दृष्टि से यह तरीका अच्छा नहीं होता।

कृत्रिम गोसंवर्धन— गायों और बैलों की उत्पत्ति कृत्रिम पद्धति से करने का भी प्रबन्ध अब क्रमशः हो रहा है। संभोग के लिये उत्सुक गाय की जननेन्द्रिय में से उसके गर्भाशय में पिचकारी के द्वारा गर्भाधान के लिये पर्याप्त वीर्यदान करने से भी काम बन सकता है। एक उन्मत्त और ऊँची जाति के साँड़ द्वारा एक साल में १५०० अच्छे बछड़े पैदा किये जा सकते हैं। एक बार में एक साँड़ के वीर्यदान (Discharge) से कम से कम ५० गौयें गाभिन रह सकती हैं।

रूस में कृत्रिम गोसंवर्धन शास्त्र बहुत उन्नति कर चुका है। वहाँ पर कृत्रिम पद्धति से दुधारू पशुओं की कतिपय अच्छी अच्छी जातियाँ उत्पन्न की गई हैं।

इंग्लैण्ड–अमेरिका में भी इस विषय में प्रयोग हो रहे हैं। केम्ब्रिज में प्रो. जोसेफ एडवर्ड्स् विशेष महत्वपूर्ण अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

आशा की जाती है कि धीरे धीरे भारत को भी इस अनुसन्धान से लाभ उठाने का अवसर मिलेगा। इस विषय का विस्तृत विवरण 'उद्यम' के जुलाई [१९४५] अंक में प्रकाशित हुआ है; अवश्य पढ़िये।

बछड़ों की देखभाल

यूरोप–अमेरिका आदि पश्चिमी देशों में और भारत की डेअरियों में भी, बिना किसी हिचकिचाहट के, उत्कृष्ट गायों के ब्याते ही उनके बछड़ों को माँ से अलग कर ऊपर का दूध पिलाया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि दूध का धन्धा करने वालों ने ही यह प्रथा प्रचलित की है। प्रारंभ में कुछ दिनों तक इन बछड़ों को मलाई निकाला हुआ दूध पिलाया जाता है। महिना–पन्द्रह दिन के बाद उस दूध में कुछ खास खास अनाजों का आटा मिलाकर बछड़ों को पिलाया जाता है। कभी कभी खली का पानी भी दिया जाता है।



कृत्रिम पद्धतिसे पैदा किया हुआ बछड़ा

यद्यपि इससे बछड़ों का भरण-पोषण कम खर्च में हो जाता है; किन्तु हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि इससे उनकी मृत्युसंख्या का प्रमाण भी बढ़ जाता है। फिर भला जैसे तैसे बचने वाले बछड़े हृष्टपुष्ट कैसे रह सकते हैं? और यदि ये ही बछड़े डेअरी के आधारस्तंभ होने लगे, तो दुग्धव्यवसाय का काम तमाम होते देर न लगेगी।

वास्तव में डेअरियों के काम में आने वाले बछड़ों की देखभाल बिलकुल अलग तरीके से होनी चाहिये। उनको अपनी माँ के दूध से वंचित करना प्रकृति के विरुद्ध कार्य करना है। माँ के स्तनों में मुँह लगाकर बछड़े के दूध पीने से ही अधिक दूध मिलेगा और माँ-बेटे को सन्तोष होगा। कई लोगों को शायद यह मालूम भी न होगा कि गाय अपने प्यारे बछड़े के प्रेम से ही अखण्डित पान्हा छोड़ती है। अतः गाय या भैंस के बछड़े को सीधे माँ के स्तनों से मुँह लगाकर दूध पीने से वंचित नहीं रखना चाहिये। उन्हें स्तनों में मुँह लगाकर ही पीने दिया जाय। केवल इतना ही ध्यान दिया जाय कि वह आवश्यकता से अधिक दूध न पीने पावे। पहिले महिने में उसके लिये प्रतिदिन डेढ़ से दो सेर तक दूध पर्याप्त होता है। बछड़ा थोड़ा भूखा रह भी गया तो कोई आपत्ति नहीं; पर अधिक दूध मत पीने दो। नहीं तो वह बीमार हो जावेगा। प्रति आठवें दिन उसे पाँच तोले अलसी का तेल पिलाते रहो, जिससे कभी एकाध बार ज्यादा दूध पी भी गया तो कोई खास नुकसान होने का डर नहीं रहेगा। गाय के ब्याने पर पहिले दिन का दूध (चीक) बछड़े को पेट भर पीने दो। इसमें बछड़े के पेट को साफ़ करने का गुण होता है। बछड़ों को उचित मात्रा में दूध मिलने पर शीघ्र ही उनकी बाढ़ होती है और इस तरह तीन-चार साल में ही अच्छी गाय अथवा साँड़ तैयार हो सकता है। प्रत्यक्ष स्तन-पान से मिलने वाले (प्राकृतिक) दूध की बराबरी और किसी भी चीज से नहीं हो सकती। बछड़े जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे वैसे उनको दिन में तीन-चार बार पेट भर पानी पिलाना चाहिये। लगभग तीन सप्ताह के बाद उनको पानी, हरी घास, थोड़ी थोड़ी चूनी आदि देना शुरू करो। इस तरह उचित प्रबन्ध रखने पर आगे चलकर इससे पूरा पूरा फायदा अवश्य ही मिलेगा।

बछड़ों की बीमारियाँ

सफेद हैजा (White Scours or Calf Cholera)—बछड़ों को कभी कभी सफेद दस्त होने लगते हैं। यह बीमारी बड़ी खराब होती है। यह संक्रामक रोग है, जो एक बछड़े से दूसरे बछड़े को तुरन्त लग जाता है। इस बीमारी से आक्रान्त बछड़ा मुश्किल से ही बचता है। प्रायः वह मर ही जाता है। मरे हुए बछड़े को दूर ले जाकर जला डालना चाहिये या गहरे गड्ढे में गाड़ देना चाहिये। उसी तरह जिस जगह पर बछड़ा मरा हो, उसे भी फिनाइल से धो डालो या जलाकर शुद्ध कर लो। यह कार्य आवश्यक है। बछड़े को इस बीमारी के होते ही झुण्ड से अलग कर दूर कहीं रखने का प्रबन्ध करो, ताकि दूसरे बछड़ों को यह बीमारी न हो सके। बछड़ों को मठा अधिक लाभ पहुँचाता है। यदि अधिक मठा होता हो तो उसमें थोड़ा नमक मिलाकर बछड़ों के साथ ही साथ दुधारू गौओं को भी पिलाया जावे।

---

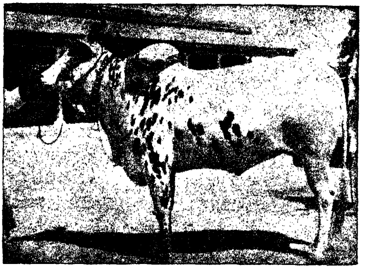
३ दुधारू जानवरों की हिफ़ाजत और वंशसुधार

हमारे पास कितने ही उच्च वंश के (पेडिग्री) पशु क्यों न हों, परन्तु उचित देखभाल करते हुए यदि हम उन्हें अच्छी अवस्था में न रखें, तो उनका कुछ भी उपयोग न होगा। भारत में उच्च जाति के पशुओं के संवर्धन का प्रश्न अधिक कठिन है; क्योंकि यहाँ पर प्रत्येक प्रान्त की जलवायु भिन्न भिन्न है। किसी प्रान्त में अत्यधिक वर्षा होती है, तो किसी प्रान्त में इतनी कम कि वहाँ उष्णता की मात्रा सीमा लाँघने लगती है और कई इलाकों में अतिशय सर्दी पड़ती है। ऐसी विभिन्न जलवायु में भी उच्च जाति के पशुओं के दर्जे और क्षमता में तनिक भी फर्क न होने दिया जाय, तभी सच्चा पशु-पालन है। अत्यधिक ठंडी से पशुओं को बचाने के लिये आवश्यक उपायों से काम लेना चाहिये। उसी प्रकार उष्ण प्रदेशों में वृक्षों की छाँह, ठण्डा जल और आवश्यकता पड़ने पर खस की टट्टियों तक का प्रबन्ध (साँड़ों के लिये) करना अत्यावश्यक है। अधिक वर्षा वाले स्थानों में खास ढंग के उत्कृष्ट गोष्ठ तैयार कर जानवरों को सूखी जगह में रखने का प्रबन्ध करना चाहिये।

प्रत्येक स्थान की जलवायु के अनुसार जानवरों को कौनसा चारा, पानी और खुराक फायदा पहुँचा सकेगा, इसका अच्छी तरह विचार कर प्रत्येक ऋतु में जलवायु की विभिन्नता के अनुसार उनके खाने पीने और रहने के प्रबन्ध में भी उचित परिवर्तन करना चाहिये। उनको बल वर्धक घास-चारा और आवश्यक खुराक देना तथा गर्मी-सर्दी से बचाना जरूरी है। विशेषकर बचपन और जवानी में जब कि पशुओं का शारीरिक विकास जोरों से होने लगता है, तब कम से कम उनके खाने पीने की उपेक्षा न की जाय। उल्टे उनकी जितनी अधिक हिफ़ाजत की जायगी, उतने ही अधिक प्रमाण में किफ़ायत भी रहेगी। यदि जरा भी उनकी उपेक्षा हुई कि धन्धा घाटे में आने ही लगा समझिये। अच्छी देखभाल होने पर ही पशुओं का अच्छा विकास होगा और दूध देने तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से वे लाभदायक होंगे, अन्यथा नहीं। जानवर जितना उत्कृष्ट जाति का होगा, उतना ही अधिक नाजुक भी होगा। ऐसे जानवर किसी भी बीमारी के शिकार भी तुरन्त ही हो जाया करते हैं। अतः ऐसे जानवरों का प्रबन्ध मामूली जानवरों की अपेक्षा बहुत ही अच्छा रखना आवश्यक होता है। यह तो हुई केवल भरण-पोषण की बात। इससे भी अधिक उच्च जाति के पशुओं की पैदायश करने की दृष्टि से "उत्कृष्ट पशुओं का चुनाव" करने की ओर भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

जानवरों का चुनाव—यह काम बड़ी चतुराई का है। उत्कृष्ट वंश के (पेडिग्री) जानवरों के उत्तम गुणों का उनकी संतत्ति में भी आना आवश्यक ही नहीं है, उत्तम गुणों के समान उनमें दुर्गुणों का आना भी निश्चित ही है। अतः 'वंश-सुधार' (Heridity) अथवा अनुकूल परिस्थिति (Environment) पर ही अवलम्बित रहना उचित न होगा। अतएव योग्य पशुओं का चुनना भी एक बड़ा ही महत्वपूर्ण काम है। समान परिस्थिति में पलकर बढ़ने वाले तथा समान वंश वाले जानवरों के खाने पीने और अन्य प्रबन्ध एक से रखने पर भी उनमें से कुछ ही जानवर अच्छी उन्नति करते हैं। उनका रूप-रंग, डीलडौल, मजबूती, दुग्ध-क्षमता आदि सारी बातों में वे बराबर उन्नति करते चले जाते है; परन्तु शेष ज्यों के त्यों ही बने रहते हैं। उल्टे वे दुबले-पतले और बेडौल होने लगते तथा दूध भी कम देने लगते हैं। इस पर से यह तुरन्त ही समझ में आ जावेगा कि अपने गोसमुदाय के लिये योग्य जानवरों का चुनाव करना कितना महत्व का काम है। अमेरिका में मि. गॉल्टन नामक वैज्ञानिक ने इस विषय में अनेकों प्रयोग किये हैं। एक बार उन्होंने हलके दर्जे

के ५३७ बछड़े, जो किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं कर रहे थे, चुन लिये और उनकी वंश परम्परा की खोजबीन करने का काम प्रारम्भ कर दिया। फलतः उन्हें पता चला कि उन बछड़ों में से ५५ प्रतिशत बछड़े निम्न श्रेणी के माता-पिता से और ४५ प्रतिशत बछड़े उच्च श्रेणी के माता-पिता से पैदा हुए थे। पश्चात् मि. गॉल्टन ने ऊँचे दर्जे के उन्नतिशील ३९१ बछड़े चुनकर, उनकी वंश-परम्परा की खोज करना शुरू किया जिसके फलस्वरूप उन्हें पता चला कि ७५ प्रतिशत बछड़े ऊँचे दर्जे के माता-पिता के द्वारा और २५ प्रतिशत बछड़े हलके दर्जे के उन्नति-रहित माता-पिता के द्वारा पैदा हुए थे।



धानी साँड

इस प्रयोगों पर से यह साफ दिखाई देता है कि ऊँची जाति के पशु जिस प्रकार भली-बुरी दोनों प्रकार की सन्तति पैदा कर सकते हैं, उसी प्रकार हलकी जाति के पशु भी दोनों प्रकार की सन्तति पैदा कर सकते हैं। उनमें भी अनुकूल परिस्थिति में ऊँचे दर्जे के माता-पिता के द्वारा पैदा हुई सन्तान में ऊँचे दर्जे की सन्तान की संख्या अधिक होती है और हलके दर्जे के माता-पिता के द्वारा पैदा हुई सन्तान में हलके दर्जे की सन्तान की संख्या अधिक हुआ करती है। इस अनुभव के अनुसार हमेशा जानवर चुनते रहने से उत्तम सन्तान अधिकाधिक संख्या में पैदा होती जाती है और हलके दर्जे की सन्तान धीरे धीरे कम होकर थोड़े ही दिनों में उत्तम गौओं का झुण्ड तैयार हो जाता है।

साँड़ की हिफाजत

गौओं के साथ रहने वाले साँड़ की शक्ति अत्यधिक क्षीण हो जाती है। अतः उसकी हिफाजत और देखभाल बहुत ही प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। जहाँ तक हो सके उसको बारहों माह हरा चारा खिलाओ। वर्षा में हरी घास मिलती ही है। ठंड के दिनों में खेत की मेड़ पर होने वाला घास अथवा हरी कड़बी मिल सकती है। गर्मी में गन्ने के हरे हरे पत्ते यथेष्ट मात्रा में मिल सकते हैं, जो साँड़ के लिये लाभदायक भी होते हैं। जिस समय गाजर निकलती है, उस समय प्रतिदिन उसको चार-पाँच पौण्ड गाजर खिलाओ। इसके अलावा रोज शाम को बिनौला, खली और चूनी, जो सुबह से ही भिगोकर रखी हो, नमक मिलाकर खिलाई जाय। साँड़ यदि बड़ा हो तो प्रतिदिन पाँच-छः पौण्ड खुराक नियमित रूप से देने में कोई हर्ज नहीं है। रोज शाम को खुरेरा करो और हर आठवें दिन उसे नहलाओ। बरसते हुए पानी, सर्दी या गर्मी में उसको बाहर बाँधकर मत रखो। साँड़ को हमेशा आराम पहुँचाने से वह हर समय काम दे सकता है।

४ डेअरी की व्यवस्था

(मवेशियों के रहने तथा चारे-पानी की सुविधाएँ)

शहर का मोह छोड़कर दुग्धव्यवसाय करने की इच्छा रखने वालों का शहर से कम से कम पाँच-छः मील दूर रहना नितान्त आवश्यक है। एक तो शहर में मवेशियाँ रखने के लिये आवश्यक खुली जगह का मिलना ही असम्भव है, इतने पर यदि मिल भी गई तो खर्च की दृष्टि से वह महँगी ही होगी। यदि शहर से कुछ दूरी पर रहा जाय, तो जगह का यही प्रश्न आसानी से हल हो जाता है। मवेशियों का स्वास्थ्य मुख्यतः खुली हवा, पर्याप्त पानी का प्रबन्ध और उत्तम चारे पर ही निर्भर होता है। डेअरी चलाने की महत्वाकांक्षा रखने वालों को यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिये।

मवेशियों के गोष्ठ

मवेशियों के गोष्ठ काफी प्रशस्त होने चाहिये। उनमें पर्याप्त, शुद्ध और खुली हवा तथा सूर्य की किरणों के आने का प्रबन्ध होना भी आवश्यक है। गोष्ठों की रचना इस ढंग से की जाय कि उनमें किसी भी ऋतु में जानवरों को कष्ट न हो तथा आवश्यक ठण्डी, उष्णता, आँधी-तूफान, जोरों की वर्षा आदि से उनका संरक्षण होता रहे। साधारण आबहवा में जानवर खुली जगह पर भी रह सकते हैं; किन्तु टीन या कवेलू के आच्छादित गोष्ठ उत्तम होते हैं। घास के मजबूत आच्छादन वाले गोष्ठ बनाने पर भी काम चल सकता है।

एक तो वे कम खर्च में तैयार हो सकते हैं और दूसरे ठण्ड के दिनों में गरम और गर्मी के दिनों में ठण्डे रहते हैं। अतः खास मजबूती की दृष्टि छोड़कर सिर्फ उपयुक्तता की दृष्टि से ही घास के गोष्ठ बनाये जायँ तो अधिक अच्छा होगा। लेकिन घास के गोष्ठों को आग से बचाने के लिये काफी सतर्क रहना पड़ता है। गोष्ठों पर यदि टीन की चद्दरें डाली गई हों, तो उन पर घास की एक पतली तह देना अधिक लाभप्रद तथा उचित होगा। चूंकि चद्दरें गर्मी के दिनों में अधिक गरम हो जाती हैं और ठण्डी के दिनों में फौरन ठण्डी भी हो जाती हैं; जिससे मवेशियों का संरक्षण होने के बदले उन्हें कष्ट ही अधिक होते हैं। जगह की सुविधा के अनुसार गोष्ठ छोटे-बड़े बाँधे जायँ; लेकिन जहाँ तक हो सके उनको प्रशस्त और लम्बे चौड़े बनाना अधिक उत्तम होगा। एक जानवर के लिये गोष्ठ में कम से कम ४×८ फुट जगह होनी चाहिये। ज्यादा ठण्ड, आँधी-तूफान या अत्यधिक गर्मी के दिनों में ही गोष्ठों का उपयोग करना पड़ता है। शेष समय में मवेशियाँ गोष्ठों के सामने की खुली जगह में, बिना किसी तकलीफ के, आराम से रह सकती हैं। चौगान में प्रत्येक जानवर के लिये ४×१० फुट जगह पर्याप्त होगी।

गोष्ठों की रचना— चौरस चौरस जगह में गोष्ठों की रचना आगे दिये अनुसार करना अधिक सुविधाजनक होगा—

दोनों बाजुओं में मवेशियों के आने-जाने के रास्ते पर फाटक या दरवाजे के लिये काफी चौड़ी जगह छोड़कर चारों ओर छपरी वाले गोष्ठ बाँधे जायँ। प्रत्येक छपरी की चौड़ाई साधारणतः आठ फुट रहे, जिससे चारों छपरियों के बीच में मवेशियों के घूमने-फिरने तथा आराम से बैठने के लिये काफी खुली जगह छूट जाय। प्रत्येक गोष्ठ में साधारणतः दो फुट चौड़ाई तथा लगभग दो-सवा दो फुट ऊँचाई की (जानवर अन्दर प्रवेश न कर सकें) सीमेंट काँक्रीट की चरनी बाँधे जायँ तथा उनमें हमेशा घास, कड़बी, पत्तियाँ आदि भरी रहें। मवेशियों का मूत्र बाहर बह जाने की दृष्टि से गोष्ठों में पक्के फर्श तथा नालियों का बनाना भी आवश्यक है। गोष्ठ रोज सुबह-शाम साफ किये जायँ। इस तरह

उचित प्रबन्ध रहने से मवेशियों में भी अच्छी आदतें पड़ जाती हैं। गोष्ठों में जगह जगह सेंधा नमक के बड़े बड़े टुकड़े टाँगकर रखे जायँ। जानवर उन्हें बड़े चाव से चाटते हैं और इससे वे अधिक पानी पीते हैं। जानवरों का स्वास्थ्य अच्छा रखने की दृष्टि से इस प्रबन्ध से बहुत सहायता मिलती है। बड़े बड़े सींगों वाले तथा मारने वाले जानवरों को हमेशा बाँधकर रखना ही उचित होगा; जिससे दूसरे जानवरों को तकलीफ न हो। जानवर बाँधकर रखने के लिये लकड़ी की चौखटों (Frames) का उपयोग किया जाय। मवेशियों को बाँधने की यह इंग्लिश पद्धति अनुकरणीय है। अपने यहाँ सरकारी डेअरी फार्म्स पर इनके नमूने देखने को मिलेंगे।

मवेशियों को बाँधने के तरीके—उक्त चौखटों में बाँधने से जानवरों के अटकने या गुँथ जाने का कोई भय नहीं रहता। चारा खाते या उठते-बैठते समय भी उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ नहीं होती। वास्तव में इस पद्धति के लिये कुछ ज्यादा खर्च भी नहीं करना पड़ता तथा मवेशियों को उनमें रहने की आदत पड़ने में भी कुछ खास कठिनाई नहीं होती। फिर भी इस तरीके का अवलम्बन करना जिनके लिये असम्भव है, वे मोहरके डालकर जानवरों को बाँधने के पद्धति का अवलम्बन करें। जानवरों को सांकल या गिरवे से बाँधने का तरीका अच्छा नहीं है। इससे कभी कभी जानवरों के फँस जाने और उनके गले में फाँसी लगने तथा उनकी जान के जोखिम में पड़ जाने का भय रहता है। ऐसी हालत में यदि समय पर ही उनकी ओर ध्यान नहीं पहुँचा, तो बिना मृत्यु के छुटकारा होना असम्भव ही है। इस दृष्टि से मवेशियों को खुले रखना ही सबसे उत्तम मार्ग है। किसी जानवर को यदि बाँधने की खास जरूरत ही हो तो मोहरका फँसाकर उनके



माँ (अपनी पुत्री से)—तेरे पतिका एक भी धन्धा ठीक नहीं चलता, इसे क्या कहा जाय ? तेरे पति में 'पानी' ही नहीं; फिर धन्धा चले तो भी कैसे ?

पुत्री—लेकिन माँ ! अब तो वे इस धन्धे में जरूर ही 'पानी' दिखाएँगे।

माँ— आखिर उन्होंने ऐसा कौनसा धन्धा शुरू किया ?

पुत्री— दू ऽ ध का !

मुँह को बाँधा जाय अथवा चौखटों में गर्दन को फँसा दिया जाय। गोष्ठों में कहीं भी दो-तीन फुट की ऊँचाई के नुकीले खूँटे नहीं होने चाहिये। एकाध बार आपस में लड़ाई हो जाने पर यदि कोई जानवर ऐसे खूँटों पर गिर जाय तो वह उसके शरीर में छिद जावेगा और परिणाम स्वरूप जानवर की तुरन्त मौत हो जायगी। मवेशियों को बाँधने के लिये यदि खूँटों की जरूरत ही हो, तो वे जमीन से कम से कम छः-सात फुट ही ऊँचे गड़े हों। मवेशियों को खूँटे से बाँधने पर उनके गिरवे खूँटे से ढीले बाँधे जाय, ताकि मवेशियों के चारों ओर घूमने पर वे खूँटे से न लिपटकर घूमते रहें और जानवरों को फाँसी न लगने पावे। इसे 'फिरकी की बाँधनी' कहते हैं। छोटे छोटे बछड़े, बछड़ियाँ, तीन चार साल के साँड़ आदि मवेशियों के अलग अलग झुंड बनाकर उनके रहने की व्यवस्था ऊपर बताये अनुसार स्वतंत्र गोष्ठों में की जाय। ऐसा अनुभव किया गया है कि समान अवस्था तथा जाति की मवेशियाँ एक दूसरे से अत्यधिक स्नेह तथा सहकार्य का बर्ताव करती हैं।

दूध निकालने का इन्तजाम—(१) दूध दुहने की जगह भी स्वतंत्र होनी चाहिये, जहाँ सीमेंट-काँक्रीट की बनी हुई एक डोंगी हो। इस डोंगी में मवेशियों की खुराक (बिनौला, चूनी, खली आदि) डालकर उसी जगह प्रत्येक मवेशी का दूध दुहा जाय। दूध दुहने के पश्चात् उसको अपने स्थान पर पहुँचा दिया जाय। मवेशियों में यह आदत पड़ जाने पर दूध दुहने मे कोई तकलीफ नहीं होती। ऐसा अनुभव किया गया है कि जानवर इस आदत को शीघ्र ही अपना लेते हैं। (२) जिस प्रकार घोड़ों को तोबरे में भरकर चने की खुराक खिलाई जाती है उसी प्रकार मवेशियों को भी खुराक खिलाओ। इससे प्रत्येक मवेशी को अपना अपना पूरा हिस्सा आराम से खाने को मिलेगा। पड़ोस की मवेशियाँ एक दूसरे को तकलीफ न देने पावेंगी।

अन्य सुविधाएँ— प्रत्येक गोष्ठ में पीने के पानी का एक छोटा सा हौज भी बनाया जाय। उसमें रोज साफ सुथरा और ताजा पानी भरना चाहिये। प्रत्येक गोष्ठ में चारे-पानी और सेंधा नमक के बँधे हुए टुकड़ों का उचित प्रबन्ध रहे। ब्याने वाली तथा बीमार मवेशियों के लिये स्वतंत्र गोष्ठों या कमरों का प्रबंध किया जाय। जहाँ तक हो सके मवेशियों को अलग अलग भिन्न भिन्न टोलियों में रखने की कोशिश करना अत्युत्तम होगा। देहातों में सौ-सवा सौ मवेशियों को एक ही कुन्द गोष्ठ में रातभर बन्द कर रखने की जो प्रथा है, वह एकदम बन्द कर दी जाय।

मालिक के रहने का इन्तजाम भी बिलकुल समीप ही खुली जगह में रहे। उसके निवासस्थान

के आसपास तनिक भी अस्वच्छता या गन्दगी न रहने पावे।

दूध के बर्तन—दुग्ध व्यवसाय के लिये बहुत अधिक बर्तनों की आवश्यकता होती है। दूध दुहने के लिये पीतल की बाल्टी या बटलोई अधिक सुभीते की होती है। दूध वितरण के लिये टोंटी–ताले वाली पीतल की बर्नियाँ अधिक उत्तम होंगी।

दूध के बर्तन काफी साफ रखने पड़ते हैं। टोंटी साफ रखने के लिये बहुत ही सतर्क रहना पड़ता है। घोड़ा गाड़ी या मोटर से दूध लाने की व्यवस्था हो तो दूध रखने के लिये अच्छे चौड़े मुँह की टंकियाँ सुविधाजनक होती हैं। लेकिन वे टंकियाँ अन्दर से साफ की जाने योग्य हों। नहीं तो बारबार दूध खराब होता रहेगा। गर्मी के दिनों में साधारणत: पाँच घण्टे और ठण्ड के मौसम में लगभग दस घण्टे तक दूध अच्छा रह सकता है। अतः दूध दुहने के बाद गर्मी के दिनों में पाँच छः घण्टों के अन्दर ही वह बाँट दिया जाना चाहिये और ग्राहकों को भी तुरन्त ही उसे उबाल लेना चाहिये, ताकि वह खराब न होने पावे। दूध उबालने में बिलंब होने पर उसका फट जाना अनिवार्य होता है।

इन पराधीन कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए मवेशियों के दूध दुहने का उचित समय अपनी अपनी सुविधा के अनुसार निश्चित कर लिया जाय। दूध वितरण के लिये होशियार और समझदार नौकरों की आवश्यकता होती है; क्योंकि एक तो दूध शीघ्र ही वितरण किया जाना चाहिये और दूसरे कौन से ग्राहक के यहाँ कितना दूध दिया गया इसका हिसाब भी उसे जबानी या लिखकर रखते आना चाहिये। इस काम के लिये दो–तीन नौकर हमेशा तैयार रहें, जिससे कठिनाई के समय तकलीफ नहीं होती।

पानी का महत्व—गोष्ठ के समीप ही बहते हुए नदी–नालों का पानी होना उत्तम है। लेकिन ऐसी प्राकृतिक सुविधा न हो, तो एक बड़ा कुँआ खुदवा कर पानी का इन्तजाम कर लिया जाय। इस कुएँ पर एक बड़ा हौज बाँध कर मवेशियों के पानी पीने का उचित प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पानी के प्रबन्ध की ओर तनिक भी दुर्लक्ष न किया जाय। मवेशियों के शरीरान्तर्गत सब व्यवहार सरलता पूर्वक चालू रहने और उनकी सभी शक्तियाँ कार्यक्षम बनी रहने के लिये ताजा, स्वच्छ, मीठा और पर्याप्त पानी नितान्त आवश्यक है। पानी से ही खून का पतलापन कायम रहता है। प्रत्येक प्राणी अपने श्वासोच्छ्वास के द्वारा पानी की भाप लगातार बाहर फेंकता रहता है और हवा अन्दर लेता रहता है। लोमरन्ध्रों तथा मूत्र के द्वारा भी शरीर से लगातार पानी बाहर निकलता रहता है। साथ ही शरीर को जिन पाचक तथा पोषक रसों की आवश्यकता होती है, उन सबका बिना पानी के तैयार होना असम्भव है। इसके अलावा उन रसों में भी पानी की एक निश्चित मात्रा आवश्यक होती है। शरीर साफ तथा स्वस्थ रखने का कार्य भी पानी के जरिये ही होता है। बहुत से लोग तो पानी का महत्व ही नहीं समझते; वे पानी के प्रबन्ध की ओर तनिक भी दुर्लक्ष न करें। खास कर गर्मी के दिनों में तो मवेशियों के पीने के पानी का इन्तजाम करने के लिये सतर्क रहना चाहिये। प्रत्येक जानवर को दिन भर में कम से कम तीन



श्री शारंगपाणी जी स्वयं गाय को नमक चटा रहे हैं।

बार स्वच्छ पानी मिलना ही चाहिये । पानी का उचित प्रबन्ध न रखने से कभी कभी बहुत नुकसान उठाना पड़ता है ।

नमक—पानी जैसा ही नमक भी महत्व रखता है । मवेशियों के लिये स्वास्थ्य की दृष्टि से नमक अत्यावश्यक है । मवेशियों के गोष्ठों में जगह जगह सेंधा नमक की बड़ी बड़ी डलियाँ टाँग कर रखी जावें, जिन्हें मवेशियाँ अपनी सुविधा तथा रुचि के अनुसार चाटती रहती हैं । नमक खाने से वे अधिक पानी पीती हैं । स्वास्थ्य की दृष्टि से यह प्रबन्ध काफी महत्व रखता है ।

चारा—जहाँ तक हो सके मवेशियों को बारहों माह हरा चारा मिलते रहने का प्रबन्ध करना चाहिये । चरोखर भी गोष्ठ के नजदीक ही हों, जिससे मवेशियों को अधिक दूर जाने के लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता । कम चलना उनके लिये हितप्रद ही होता है । बड़े बड़े चरोखर छोटे छोटे भागों में विभाजित कर लिये जायँ और क्रमशः एक एक भाग उनके चरने के लिये खुला किया जाय । जंगल से चरकर आने के बाद गोष्ठों में भी उनको थोड़ा-बहुत चारा देना आवश्यक होता है । गर्मी के दिनों के लिये कुछ प्लॉट्स बचाकर शेष सभी (उपयोग में आये हुए) जला डालो, जलाने से बरसात में अधिक घास ऊगता है । लोनी, कौंदी, कैल आदि अत्युत्तम जाति के घासों के बीज इकट्ठे कर अपने चरोखरों में बोये जायँ । फूलने या बीज पड़ने पर सितम्बर के अन्त में या अक्टूबर में घास की कटाई कर उसकी गंजियाँ रच देनी चाहिये । घास की उक्त जातियाँ बहुत ही पौष्टिक तथा मवेशियों के लिये लाभदायक होती हैं और उन्हें वे बड़े स्वाद से खाती हैं । इस वक्त घास का साइलेज करना भी अच्छा है । इन महिनों में कटे हुए घास का ही अधिक महत्त्व है । इस घास को गर्मी के दिनों में भी मवेशियाँ बड़े चाव से खाती हैं ।



श्री. शा. रंगपाणी जी की डेअरी की मवेशियाँ झाडपत्ती बड़ी चाव से खा रही हैं ।

गर्मी के मौसम में जानवरों को वृक्षों की पत्तियाँ खिलाओ

वास्तव में जानवरों को बारहों माह हरा ही घास खाने के लिये चाहिये । लेकिन सामान्यतः ऐसा होना असम्भव है । खासकर गर्मी के दिनों में तो हरे चारे का बहुत ही अभाव महसूस होता है । ऐसे समय पेड़ों की हरी हरी पत्तियों का उपयोग किया जाय । हरे चारे के समान ही वृक्षों की पत्तियों से भी काफी लाभ होता है । गर्मी के दिनों में जब कि तेज गर्मी का मौसम रहता है, पेड़ों पर हरीभरी नई पत्तियाँ फूटी हुई दिखाई देती हैं । जानवरों को इन नई पत्तियों के खिलाने से वे सम्पूर्ण गर्मी के मौसम भर तन्दुरुस्त रहते हैं । पत्तियों तथा फलों की दृष्टि से निम्न वृक्ष अधिक महत्व रखते हैं ।

पीपल—सभी लोग इस वृक्ष का अच्छी तरह पहिचानते हैं । इस वृक्ष का फल, पत्ता, शाखा, डण्ठल कुछ भी तोड़िये, उसमें से आपको दूध जैसा पदार्थ बहता हुआ दिखाई देगा । यह वृक्ष किसी भी आबहवा में पनप सकता है । गर्मी के दिनों में विपुल पत्तियाँ तथा घनी छाया इस वृक्ष से मिलती है । इस वृक्ष की पत्तियाँ अत्यधिक पौष्टिक, स्वास्थ्यप्रद तथा जानवरों के दूध देने की

क्षमता को बढ़ानेवाली होती हैं। मवेशियाँ इसे बड़े चाव से खाती हैं। साल में तीन–चार बार इसकी पत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। यदि काफी तादाद में इस जाति के वृक्ष लगाये जायँ, तो गर्मी के मौसम की चारे की कठिनाई थोड़े बहुत अंश में हल हो जावेगी। रास्तों के किनारे; पड़ती जमीन में तथा नदी–नालों के समीप ये वृक्ष अच्छी तरह पनप सकते हैं। ऐसा बताया जाता है कि यह वृक्ष तीन सौ से लेकर पाँच सौ वर्षों तक सहज ही जीवित रह सकता है। सरकारी अथवा अर्ध सरकारी संस्थाएँ (लोकल बोर्ड्स, म्युनिसिपैलिटीज) यदि इन बातों पर ध्यान दें, तो बहुत कुछ कार्य हो सकता है।



श्री. शारंगपाणी जी बैल को हरी पत्ती खिलाने का यत्न कर रहे हैं।

गूलर—इस वृक्ष के भी पत्ती–फल तथा डंठल में काफी दूध होता है। इस वृक्ष में भी साल में चार बार नई पत्तियाँ आती हैं। इसके अलावा साल में पाँच–छः बार इसको विपुल फल भी आते हैं। पके हुए फल अंजीर जैसे दिखाई देते हैं और खाने में बहुत मीठे और रुचिकर होते हैं। जानवर ये फल बड़े चाव से खाते हैं। मवेशियों के लिये तो यह प्राकृतिक खुराक ही समझनी चाहिये। काफी मात्रा में जानवरों को ये फल खिलाने से उनकी खुराक के लिये होने वाले खर्च में निश्चित ही बचत होगी। अल्प मिहनत से ये झाड़ तैयार हो सकते हैं। इस वृक्ष की पत्तियाँ भी मवेशियों को लाभ पहुँचाती हैं और वे उन्हें बड़ी चाव से खाया करते हैं। ये पेड़ भी काफी तादाद में लगाए जाने पर चारे की समस्या हल होने में मदद होगी।

बिरला—पत्तियों की दृष्टि से यह झाड़ भी काफी महत्व रखता है। इस जाति के पेड़ों से भी काफी पत्तियाँ मिल सकती हैं। चाँदा जिले में (म. प्रां.) ये वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। इस वृक्ष की पत्तियाँ मवेशियों के लिये अत्यधिक शक्तिवर्धक सिद्ध हुई हैं। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में जब जानवर बिलकुल शक्तिहीन हो जाते हैं, उनमें खड़े होने की भी ताकत नहीं रहती और उनकी कमर कमजोर हो जाने से जब वे बैठ जाते हैं, तब उन्हें इसकी पत्तियाँ लगातार आठ दिन तक दी जायँ, तो तुरन्त ही उनमें शक्ति आ जाती है और वे आप ही आप उठकर खड़े हो जाते हैं। इस वृक्ष की पत्तियाँ गूलर की पत्ती जैसी ही दिखाई देती हैं और उसी तरह चमकीली, हरीभरी और रसीली भी होती हैं। इन पेड़ों में फलियाँ भी विपुल मात्रा में आती हैं और उनमें बीज का प्रमाण भी काफी होता है, जिससे इस जाति के नये नये पेड़ लगाकर उनकी वृद्धि सरलता पूर्वक हो सकती है। वर्षा ऋतु में बीज लगाये जाने पर वे तुरन्त ऊग आते हैं। पहाड़ों पर भी ये वृक्ष अच्छी तरह पनप सकते हैं। इसकी लकड़ी भी मजबूत और इमारत के लिये बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। जलाने की दृष्टि से भी इसकी लकड़ियाँ काफी महत्व रखती हैं।

बबूल—इस झाड़ की पत्तियाँ मवेशियों के लिये भले ही उपयुक्त न हों; लेकिन बकरी और भेड़ के लिये तो काफी अच्छी होती हैं और वे उसको बड़ी रुचि से खाती भी हैं। इसकी पत्तियों में पौष्टिक द्रव्य भी अधिक तादाद में मौजूद रहते हैं। कभी कभी जानवर भी इस झाड़ की पत्तियाँ बड़े चाव से खाते हैं। गर्मी के दिनों में इस झाड़ में बहुत अधिक फलियाँ लगती हैं। लेकिन लोग उनके महत्व को नहीं जानते और वे बेकार जाती हैं। ये फलियाँ बिनौले और खली की समता रखती हैं। दुधारू जानवरों को इन फलियों के खिलाने से उनसे प्राप्त दूध पर अधिक मलाई आती है और अशक्त जानवर सशक्त भी हो जाते हैं।

इस झाड़ से गोंद भी काफी मिलता है तथा यह भी आमदनी का एक रास्ता हो जाता है। इस वृक्ष की लकड़ी बहुत ही मजबूत होती है और जलाने की दृष्टि से लेकर खेती के औजार बनाने तथा इमारतों के लिये भी उनका विश्वास पूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इसके बराबरी की मजबूत लकड़ी शायद ही कोई हो। इन सब दृष्टियों से बबूल के वृक्ष लगाने का कोशिश करना लाभदायक ही है।

पीली बेला—यह बेला सरलता पूर्वक पैदा होने वाली है। इसमें अत्यधिक पत्तियाँ आती हैं। पत्तियाँ गूलर की पत्तियों जैसी बड़ी होती हैं। जानवर इनको खाने के लिये अधिक पसन्द करते हैं; एक बार लगाई हुई बेला आप ही आप कभी भी नष्ट नहीं होती। गर्मी में वह भले ही सुखी हुई सी दिखाई दे; किन्तु वर्षा होते ही तुरन्त हरी भरी हो जाती है और महिने देढ़ महिने में विपुल पत्तियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। यह बेला प्रायः नदी-नालों के किनारों से प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। प्रति वर्ष इससे बहुत बीज मिलते हैं, जो सूखने के बाद इधर उधर फैलकर वर्षा होते ही ऊग आते हैं, और आप ही आप इनकी संख्यावृद्धि होती जाती है। इस बेला की भी पत्तियाँ मवेशियाँ बड़े चाव से खाती हैं। चारे की कमी के समय इसकी पत्तियाँ काफी तादाद में उपलब्ध हो सकती हैं। चारे की समस्या हल करने की दृष्टि से इस बेला का बहुत बड़े पैमाने पर लगाया जाना अधिक महत्व रखता है।

वासन बेला—यह भी एक चारे की दृष्टि से उपयुक्त बेला है। यह बेला भी सहज ही और बहुत बड़े पैमाने पर हो सकती है। इस बेला में छोटे छोटे विपुल फल आते हैं। रुचि में वे गुड़ जैसे मीठे लगते हैं और उनका रस जामुनी-लाल से रंग का होता है। बीज के द्वारा बहुत सी बेला तैयार की जा सकती है। इन बेलाओं की पत्तियाँ छोटी छोटी और हरीभरी रहती हैं, जिन्हें मवेशियाँ बड़े चाव से खाती हैं। जानवरों का दूध बढ़ाने के लिये यह एक शर्तिया इलाज है। बिना परिश्रम के ये बेलाएँ अच्छी तरह पनप सकती हैं। जहाँ संभव हो ये बेलाएँ अवश्य ही लगाई जानी चाहिये।

इसके अलावा बड़, महुआ, अर्जुन, रेंट्र, नीम, हिवर, घोटी, आपटा, पलास, बेहाड़ा, तिनसा, धामन आदि झाड़ों की पत्तियाँ भी (उनकी आदत होने पर) मवेशियाँ बड़े चाव से खाती हैं। इतना ही नहीं, बरन इसके लिये मवेशियों में रुचि भी पैदा की जा सकती है।

---

५ मवेशियों का स्वास्थ्य—बीमारियाँ और उन पर इलाज

जानवरों का स्वास्थ्य जंगल की खुली हवा में बहुत ही अच्छा रहता है। यह पहिले बताया जा चुका है। पशुओं को हमेशा उनकी आवश्यकता के अनुसार हजम हो सकने योग्य उचित प्रमाण में ही खुराक देनी चाहिये, जिससे उन्हें अपचनादि विकार न होंगे तथा उनकी तन्दुरुस्ती के बिगड़ने की सम्भावना भी कम रहेगी। जानवरों में भी मनुष्यों के समान अघोरी जैसी खाने की आदत होती है। आवश्यकता के अनुसार उनकी खुराक का प्रमाण आप स्वयं ही निश्चित कीजिये। घास, कड़बी, झाड़ों की पत्तियाँ आदि मामूली चारा पेटभर खिलाने में कोई हर्ज नहीं है, इससे उनको अपचन नहीं होता। बिनौले, खली आदि जैसी भारी खुराक प्रमाणबद्ध ही देनी चाहिये। पशुओं को जंगल में आँवले, जंगली बेर, घोटी के फल, महुए के फल, बबूल की फलियाँ, बिबला, तिनसा आदि वृक्षों की पत्तियाँ विपुल मात्रा में खाने को मिलती हैं। ऐसे चारे, जंगल की खुली हवा, तथा स्वच्छ पानी का पशुओं के स्वास्थ्य पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है और वे सहसा बीमार नहीं होते। साधारणतः संक्रामक बीमारियों के समय विशेष सावधानी से काम लेने की आवश्यकता होती है।

प्रतिबन्धक इलाज — संक्रामक रोगों के शुरू होते ही अपनी डेअरी का स्थानान्तर पहिली जगह से लगभग मील–देढ़ मील दूर कर देना चाहिये। इसको 'Segregation' कहते हैं। ऐसा करने से बीमारी एकदम से काबू में आ जाती है। छुतही बीमारी से पशुओं के झुण्ड के झुण्ड मर जाने के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। अतः इस सम्बन्ध में काफी सतर्क रहना पड़ता है।

जानवरों का दवाखाना समीप और सुविधाजनक होने पर डॉक्टर से ही अपने जानवरों के बीमारी की परीक्षा करवाना चाहिये। और उनके सुझाये हुए तथा किये हुए उपचारों को चालू रखना चाहिये। बहुधा जानवर ब्लेक क्वारटर्स, रेन्डरपेस्ट (माता), सफेद कालरा, आदि संक्रामक रोगों से बीमार हुआ करते हैं। ऐसे घातक रोगों से बचाने के लिये प्रतिबंधक इलाज के नाते डॉक्टर की सलाह लेकर साल में दो–तीन बार पशुओं को टीका लगवा लेना चाहिये, जिससे छुतही रोगों के होने का अधिक भय नहीं रहता।

'इकटंगी' रोग— छुतही रोगों के सम्बन्ध से हमें जो अनुभव हुआ है, वह आगे दिया जाता है। आशा है वह पाठकों को मार्गदर्शक होगा। हमारे जानवरों में से एक तीन साल का उत्कृष्ट साँड़ दोपहर को बारह बजे अच्छी तरह चरकर एवं पानी आदि पीकर आराम करने के लिये गोष्ठ में लौट आया। उस समय उसकी तबियत ठीक थी; लेकिन तीन बजे जब सब मवेशियाँ चरने के लिये जंगल को जाने लगीं तब उससे किसी भी तरह उठते न बनता था। हर तरह से उसे उठाने का प्रयत्न किया गया; किन्तु जब वह उठ न सका, तब बाकी की सब मवेशियाँ उसे वहीं छोड़कर चरने के लिये चल दीं। उसी दिन शाम को पाँच बजे वह साँड़ मर गया। यह देखकर हम लोग घबरा गये। हमने फौरन ही बैलगाड़ी भिजवाकर मवेशियों के डॉक्टर को बुलवाया और उस साँड़ की चीराफाड़ी की; लेकिन डॉक्टर भी उसकी अचानक मृत्यु का कारण न जान सके। अब हमें बड़ी चिन्ता हुई और कुछ सोच विचार कर हमने अपने डेअरी को स्थानान्तर करना उचित समझा तथा फौरन ही सुबह वहाँ से लगभग मील देढ़ मील की दूरी पर एक पहाड़ के समीप नदी के किनारे अपना डेरा डाल दिया। डेअरी का काम ज्यों का त्यों चालू ही था। डॉक्टर भी उस साँड़ का खून परीक्षा करवाने के लिये अमरावती ले गये। उचित परीक्षा के बाद यह निष्कर्ष निकला कि वह इकटँगी का रोग था। यह रोग अत्यधिक घातक और धोखेबाज होता है। जानवरों की मृत्यु होने के कम से कम १५–२०



" वाहरे मेरी करामत ! जब से मैंने चाय के लिये दूध का पाऊडर उपयोग में लाना शुरू किया, तब से बस, मेहमानों का ताँता एकदम बन्द ही हो गया !

रोज पहिले से इस रोग का असर होता है; किन्तु उस समय कोई लक्षण नजर नहीं आते। मृत्यु के सिर्फ पाँच-छः घण्टे पहिले इस रोग के कुछ चिन्ह दिखाई देते हैं और तुरन्त ही पशु की मृत्यु हो जाती है। डेअरी स्थानान्तरित करने के सम्बन्ध से हमने जो तत्परता की, उसके लिये डॉक्टर ने हमारी सराहना की। जिन जिन बछड़ों को पहिले ही इस रोग का असर हो चुका था, वे ही सिर्फ डेअरी की इस नूतन जगह पर मरे; बाकी के सब भले चंगे रहे। रोग का अधिक फैलाव भी न हो सका। डेढ़-दो महिने के बाद हम लोग अपनी डेअरी को लेकर पुनः अपनी पुरानी जगह पर आ गये।

जानवरों की सामान्य बीमारियाँ और उनपर इलाज़

' फाँसी ' रोग—दुधारू जानवरों को फाँसी के रोग की बाधा होने से उनका दूध एकाएक बहुत ही कम हो जाता है। कभी कभी वह टूट भी जाता है। इस बीमारी में जानवर जुगाली नहीं करता, दाना-चारा नहीं खाता, पानी नहीं पीता और उसकी आँखें अन्दर की ओर धँस जाती हैं। एकाएक पशु अस्वस्थ सा दिखाई देता है। ऐसे लक्षण नजर आते ही जानवर के जीभ की परीक्षा करवाना आवश्यक है। ' फाँसी ' की बीमारी हुए जानवर की ज़ीभ के पीछे की बाजू में काली-नीली और फूली हुई मोटी नसें दिखाई देंगी। स्वस्थ जानवर की ये नसें गुलाबी रंग की होती हैं। बीमार जानवर की ये नसें एक मोटी सुई से छेद डालो, जिससे उनमें जमा हुआ काला, सड़ा हुआ तथा विषैला खून एकदम बाहर निकल आवेगा और जानवर को तुरन्त आराम हो जायगा। दो-चार दिन के बाद स्वस्थ होकर जानवर धीरे धीरे पुनः पूर्ववत् दूध देने लगता है। विशेषकर अपचन के कारण ही यह बीमारी होती है। ब्याने के बाद दुधारू जानवरों को अधिक दूध मिलने की आशा से हम लोग आवश्यकता से अधिक और शीघ्र न पचने वाली खुराक दिया करते हैं तथा इसी वजह से अक्सर यह रोग हो जाया करता है।

मुँह पकना—जानवरों का मुँह पकने के बाद प्रतिदिन उनकी जीभ पर हल्दी, नमक और मक्खन मला जाय। दो-चार भिलावें कुचलकर उसमें प्याज मिलाओ और इन दोनों वस्तुओं को गेहूँ के गीले आटे के साथ खिलाओ। जब तक आराम नहीं हो जाता यह दवा रोज सुबह-शाम जानवर को देते रहना चाहिये।

पैर पकना—यह रोग भी बहुत खराब है। मवेशियों के खुरों में कीड़े पैदा होकर सब खुर खा जाते हैं, जिससे मवेशियाँ ठीक तरह चल नहीं सकतीं। कभी कभी तो इसी रोग से उनकी मृत्यु भी हो जाती है। इस रोग के प्राथमिक लक्षण नजर आते ही जानवर के चारों पैर बाँधकर उसे जमीन पर गिरा दो और उसके सब खुर पोटेशियम परमेगनेट के पानी से (लाल दवा) साफ धोकर उस पर फिनाईल, डामर आदि जन्तुनाशक दवाइयाँ लगा दो। इन औषधियों से अक्सर आराम तो हो ही जाता है; किन्तु फिर भी आगे एक इलाज

और बतलाया गया है, जो इससे सुलभ और अधिक गुणकारी है। मवेशी के खुर पोटेशियम परमेगनेट के पानी से साफ धोकर अन्दर के सब कीड़े निकाल लिये जायँ और उन जखमों में काफी गुड़–चूना भर कर ऊपर से चिकनी मिट्टी की पट्टियों से समूचा खुर कसकर बाँध दिया जावे। तत्पश्चात् काली चिकनी मिट्टी गीलीकर उससे, जखमें बाँधी हुई इन पट्टियों को एक घनी और मोटी तह देकर, लीप दो। तीन दिन के पश्चात् पट्टियाँ छोड़कर पुनः नई पट्टियाँ बाँधो। एक–दो बार पट्टी बदलने से सब कीड़े मर जाते हैं और जानवर तन्दुरुस्त हो जाता है।

आँखे का सफेद होना–आँख पर चोट लगने से कभी कभी मवेशियों की आँखें बिलकुल सफेद हो जाती हैं और उनमें से लसीला पानी बहता है। इसको रोकने के लिये भिलावें और साबुन का चन्दन दिन में दो बार आँख के अन्दर लगाया जाय। यह इलाज पाँच–छः दिन करने से आँख पहिले जैसी दुरुस्त हो जाती है। यदि इस इलाज से आँख ठीक न हो, तो कान के नीचे वाले दोनों चालों को दाग (चाबी या हँसिया से जलाना) दो। इससे शर्तिया आँख दुरुस्त हो जाती है। लेकिन इसके लिये दाग देने की अच्छी जानकारी होनी चाहिये। यह इलाज कई रोगों पर उपयुक्त जान पड़ा है।

कभी कभी मवेशियों को रसौली (एक प्रकार के फोड़े) जैसी बीमारी हो जाया करती है। ऐसे रोग गले पर हो जाने से मवेशियों को बड़ी तकलीफ उठानी पड़ती है। वे खा-पी नहीं सकते। ऐसे फोड़े उसके मुँह पर दाग देने से ठीक हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीर के किसी भी भाग पर आई हुई सूजन दाग देने से अच्छी हो जाती है। सूजन पर गुड़–चूने का घना लेप करने से भी तुरन्त आराम होता है।

जखमों पर इलाज़– खेतों की काली चिकनी मिट्टी कपड़छानकर रख दी जावे। छोटी बड़ी जखमों पर यह मिट्टी गीली कर बार बार लगाते रहने से जखम शीघ्र ही दुरुस्त हो जाती है। गुड़–चूना या कभी कभी सिर्फ पतला चूना लगाने से भी जखम फौरन अच्छी हो जाती है। इसके लिये हमेशा कली का चूना ही काम में लाना चाहिये।

अफरा या फूलना–– जानवर के फूलने का कारण जानना तो कठिन ही होता है। बहुधा घास में होने वाले एक प्रकार के कीड़ों के पेट में जाने से ही जानवर फूलता है। अपचन से भी जानवरों का फूलना संभव है। फूला हुआ जानवर बहुत अस्वस्थ रहता है। किसी भी कारण से क्यों न हो जानवर के फूलने पर उसे डॉक्टर के पास ले जाने के पहिले २० तोले अलसी का तेल, १ तोला नमक मिलाकर, पिला दो और ऊपर से ४० तोले पानी भी पिला दो। पश्चात् गेहूँ के आटे में १ छटाक नीबू का अचार भी खिलाया जाय।

भैंसों तथा अन्य जानवरों के पालने वालों को चाहिये कि वे हमेशा अपने पास पर्याप्त मात्रा में नीबू का अचार रखें। और जानवर के अस्वस्थ होते ही उसे १ छटाक नीबू का अचार, बिना किसी की सलाह लिये, गेहूँ के गीले आटे के साथ खिला दें। पश्चात् कंबल को उमेठकर उससे जानवर के फूले हुए भाग को जोर से थपथपावें। इस तरह आध घण्टे तक फुले हुए भाग को सब ओर से थपथपाने पर जानवर को आराम पहुँचता है। यह इलाज बिल्कुल अनुभव सिद्ध है। यदि बीमारी अधिक बढ़ गई हो, तो अविलंब डॉक्टर की सलाह लो। एनिमा देने का इन्तजाम हो तो डॉक्टर के पास पहुँचने के पहिले प्राथमिक उपचार के रूप में एनिमा भी दे दिया जाय।

जानवर को ठोकर लगना या उसका लंगड़ना– जिस स्थान पर दुःख हो और जिस भाग से जानवर लंगड़ता हो उसी भाग पर निम्न इलाज किया जाय–––

थोड़ी सी बमीठे की मिट्टी, थोड़ा सा गाय का गोबर और नीम की पत्ती पानी में मिलाकर लोहे के टोकने में अच्छी तरह पकाओ। फिर सहन होने योग्य गरम पानी में कपड़ा गीला कर उससे चोट अथवा उसके आस पास के भाग को सेंक डालो। आराम होते तक रोज सुबह शाम यह इलाज जारी रखो। जब तक तकलीफ दूर न हो जाय जानवर को बाँध कर रखो।

कभी कभी अधिक चोट लगने अथवा जोर से ठोकर लगने पर जानवर के दुरुस्त होने में १ महिने तक का समय भी लग जाता है।

६ दुग्धव्यवसाय के साथ चलाये जाने योग्य धंधे

मुर्गी पालन-व्यवसाय

मवेशियों के शरीर पर बहुत सी जूँ और किल्लनियाँ पाई जाती हैं, जिनसे जानवरों को बहुत कष्ट होता है। इनका नाश करने की दृष्टि से मुर्गी बहुत उपयुक्त पक्षी होता है और इससे दुग्धव्यवसाय में मुर्गी पालन-व्यवसाय के लिये काफी गुंजाइश प्रतीत होती है। काम से काम और गुठली के दाम। मवेशियों के गोष्ठों में खली, बिनौला, चूनी इतनी बेकार जाती है कि उस पर ५० मुर्गियों का निर्वाह बहुत ही आसानी से हो सकता है। इसके सिवाय खेतों में होने वाले कीड़े, चिऊटियाँ आदि भी मुर्गियों की उपजीविका के साधन होने से उनके पोषण के लिये अधिक खर्च नहीं करना पड़ता। दुग्धव्यवसाय करने वालों को चाहिये कि वे इस व्यवसाय से अवश्य लाभ उठावें। इस दृष्टि से उन्हें 'उद्यम' में गत वर्ष प्रकाशित हुई 'मुर्गियों की आदर्श पैदावार' नामक लेखमाला से काफी सहायता प्राप्त हो सकेगी।

घास बेचने का व्यवसाय

दुग्धव्यवसाय करने वालों को स्वतः की मवेशियों के लिये बहुत अधिक घास की आवश्यकता होती है। इसके लिये बैल गाड़ियों के द्वारा प्रति-दिन जंगलों से घास लाना ही पड़ता है।

इससे फायदा उठाने के लिये समीप के शहरों में अल्प प्रमाण पर घास बेचने का धन्धा करना उनके लिये कुछ कठिन नहीं होगा। इससे घास के लिये लगने वाला बहुत कुछ खर्च परस्पर में बँट जाता है और गाड़ी के काम में आने वाले बैलों का खर्च भी खुद ही के सिर पर नहीं पड़ता।

छोटासा ब्रीडिंग सेन्टर भी चलाओ

दुग्धव्यवसाय के साथ एक छोटा सा ब्रीडिंग सेन्टर भी चलाया जा सकता है, जिससे दोहरा लाभ होगा। अपनी डेअरी के लिये आवश्यक उत्तम जाति की मवेशियों की पैदायश अपने ही फार्म पर करते रहने से पुरानी मवेशियों का दूध कम हो जाने के बाद कम से कम कीमत पर उन्हें बेचने और दुधारू जानवरों के लिये अत्यधिक कीमत देकर खरीदने का मौका नहीं आता। डेअरी के लिये आवश्यक जानवरों की पूर्ति हो जाने के बाद यदि कुछ बछड़े बचे, तो उनको वैसे ही बेच डालने के बदले उत्कृष्ट जानवर, साँड़ या खेती के लिये बैल तैयार कर बेचा जाय। इससे अधिक लाभ होगा।

खेती के लिये बैल तैयार करना

डेअरी का धन्धा करने वालों के लिये यह भी एक धन्धा चलाने लायक सिद्ध होगा। साधारणतः प्रत्येक किसान थोड़ी बहुत गायें पालता ही है और उनसे खेती के काम के लिये कुछ बैल घर ही तैयार करता जाता है। लेकिन एक आदमी दो घोड़ों पर भला किस तरह सवार हो सकेगा? किसान अपने खेत की ओर जितना ध्यान देता है, उतना ही वह गायों की ओर किस तरह दे सकता है? परिणामस्वरूप उसकी गायों का गर्मी और वर्षा के प्रारम्भ में मर जाना बिलकुल स्वाभाविक है। इस तरह उसका गोधन बढ़ने के बदले घटता ही जाता है; फिर व्यवसाय की वृद्धि तो कोसों दूर रही?



अच्छी जाति के बैलों द्वारा ही बड़े पैमाने पर खेती की जा सकती है।

इस अनुभव से यह बात सिद्ध होती है कि सिर्फ दुग्धव्यवसाय का धन्धा करने से ही काम न चल सकेगा; बल्कि उन्हें उत्कृष्ट दुधारू गायें, साँड़ और बैलों को तैयार करने का काम भी अपने हाथ में लेना चाहिये। इसके सिवाय दुग्धव्यवसाय से उचित लाभ न मिल सकेगा। गाय का दूध टूट जाने पर उसको कम से कम कीमत पर बेचकर भरपूर दूध देने वाली नई गाय अधिक से अधिक कीमत देकर खरीदना भला कैसे युक्ति संगत होगा? इससे तो उसे हमेशा नुकसान ही उठाना पड़ेगा। ऐसा व्यवसाय करने वाला कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। चारे का प्रश्न सरलता से हल करके ब्रीडिंग फार्म जैसा जोड़ व्यवसाय किये बिना दुग्धव्यवसाय का लाभप्रद होना करीब करीब असम्भव-सा ही समझना चाहिये। उत्कृष्ट बछड़ियों का दुग्धव्यवसाय के लिये, चुनिंदे बछड़ों का साँड़ के लिये और उनसे कम दर्जे के बछड़ों का खेती के बैलों के लिये पालन पोषण (संवर्धन) करना चाहिये। मवेशियों का पालन पोषण काफी सतर्कता से किया गया और बछड़ों को पेटभर दूध मिलता रहा तो ऊँचे दर्जे की गायें, साँड़ और बैलों के तैयार होने में कोई विशेष कठिनाई न होगी। लेकिन वस्तुस्थिती बिलकुल भिन्न है। अपने इधर प्रत्येक किसान के पास कम दूध देने वाली गायें ही दिखाई देंगी। उनके चारे-पानी-खुराक की दुर्व्यवस्था आदि बातों से उनकी औलाद बिलकुल नाटी, कमजोर, और बेडौल ही पैदा होती है; कभी उनके खुराक की कमी है, तो कभी गर्मी में पीने के पानी का उचित प्रबन्ध नहीं है और कभी उनको पेटभर चारा नहीं मिलता। भला कहीं ऐसे अधूरे (Half-hearted) प्रयत्नों के भरोसे धन्धा यशस्वी हो सकता है? ऐसी अवस्था में धन्धा उलटा चलने लगे तो इसमें क्या आश्चर्य?



कृष्ण-किनारे की आदर्श बैलजोडी

शुरू शुरू में इन दुग्धव्यवसाय के साथ चलाने-योग्य व्यवसायों पर बहुत अधिक खर्च करना पडता है और वे, बिना लगन के, फायदेमन्द भी नहीं हो सकते। लेकिन एक बार घर ही की मवेशियाँ तैयार होने लगीं कि फिर प्रति वर्ष नये नये जानवर अपने व्यवसाय के लिये मिलने लगते हैं और धन्धा भी जोर शोर से चलता है। धन्धा जोर शोर से चलने के लिये करीब करीब पाँच-सात साल तो खर्च ही करना पड़ता है तथा धैर्य भी धारण करना पड़ता है।

खादों को तैयार करने का व्यवसाय

सर्व प्रथम शास्त्रोक्त तरीकों से खाद तैयार करने की जानकारी प्राप्त कर उसके अनुसार प्रयत्न पूर्वक यदि उत्कृष्ट खाद तैयार किये गये तो उनसे भी काफी आमदनी हो सकती है। डेअरी पर का सब गोबर, मूत्र, कूड़ा-कचरा, झाड़न का कचरा आदि से शास्त्रोक्त तरीकों पर सिर्फ गोबर का ही खाद नहीं तो कृत्रिम गोबर-खाद (Farmyard Manure) तैयार करने का धन्धा भी लाभदायक हो सकेगा। यदि यह समस्त खाद बिक न सका तो बचे हुए खाद का स्वतः की खेती-बागवानी के लिये उपयोग किया जा सकता है। और इससे आप गन्ना, साग सब्जियाँ, फलों के वृक्ष और फूलों के बगीचे लगाकर भारी तथा कीमती फसलें (Money-crops) उपजा सकते हैं। गन्ने की बाड़ी

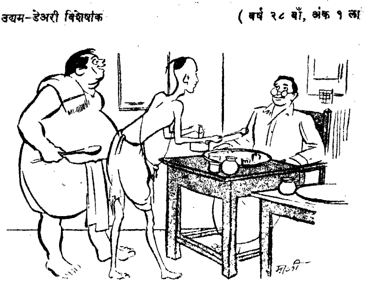
लगाने से गुड़ तो मिलेगा ही, साथ ही गन्ने के ऊपरी हरेभरे सिरे भी मिलेंगे जो दुधारू जानवरों के काम आएँगे। गन्ने के ताजे सिरे दुधारू जानवरों के लिये अच्छे होते हैं।

दुग्धमंदीर चलाओ

दुग्धव्यवसाय करने वालों के सामने हमेशा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बिक्री से बचे हुए दूध का क्या किया जाय? उससे मक्खन और दही बनाकर बेचा जा सकता है। वैसेही मिठाई, पेढ़े, बर्फी तैयार करना यह भी शेष दूध उपयोग में लाने का एक उत्तम तरीका है। यदि घर में मिठाई तैयार न हो सकती हो तो खोवा ही मिठाईवालों को बेचा जाय। वास्तव में बड़े पैमाने पर दुग्धव्यवसाय करने वाले खुद ही दुग्धमन्दीर चलावें; शेष दूध का विनियोग करने का यही श्रेष्ठतम मार्ग है। स्वच्छता रखने वाले एकाध चतुर, व्यवहार कुशल और विश्वासी व्यक्ति की निगरानी में ऐसे दुग्धमन्दीरों की व्यवस्था सौंपने से बचे हुए दूध के विनियोग का प्रश्न आपही आप हल हो जायगा। ऐसे दुग्धमन्दीरों में यदि विश्वसनीय दूध, दही, छाँछ, मक्खन तथा हर किस्म की मिठाई रखने का इन्तजाम किया जाय, तो चाहे जितने ग्राहकों के मिलने में कोई कठिनाई नहीं आवेगी। सबसे कम तकलीफ तथा सुविधा का मार्ग ताजा दूध चन्दी के द्वारा अथवा चिल्लर बेच डालना ही है। सुविधा के साथ इसमें फायदा भी है। लेकिन वर्षभर लगातार चन्दियाँ टिकाना और उनको अखण्ड दूध पुराना व्यावहारिक दृष्टि से बड़ा कठीन हो जाता है। प्रति दिन निश्चित मात्रा में ग्राहकों को दूध मिलना प्रत्यक्ष असम्भव ही होता है। इस नियमितता में आगे दी गई कठिनाईयाँ हमेशा बाधा डाला करती हैं—

(१) आबहवा में फर्क हो जाने पर (खासकर गर्मी के दिनों में जब कि एक दो हप्ते तेज गर्मी पड़ती है) कम से कम ३० प्रतिशत दूध कम मिलता है (१०० सेर के जगह सिर्फ ७० ही सेर)। इसी तरह दिसम्बर की कड़ी ठण्डी में भी होता है और इसीके साथ कहीं ठण्डी की तेज लहर आई कि फिर कुछ पूछिये ही नहीं। दूध एकाएक लगभग आधा ही हो जाता है (१०० सेर की जगह ५०-६० ही सेर)। वर्षा के दिनों में भी यही हाल। लगातार चार-आठ दिन तेज हवा और आँधी-तूफान का जोर रहा तो फिर वही गति। दूध का प्रमाण लगभग आधे पर ही आ बैठता है।

(२) कभी कभी ४-५ मवेशियाँ एकाएक दूध ही देना बंद कर देती हैं तो कभी कभी कुछ मवेशियाँ बीमार हो जाती हैं, आदि अनेक अडचनें उपस्थित होती रहती हैं। ऐसे अवसरों पर ग्राहकों के नाराज होने का भय रहता है; फिर उन्हें खुश किस तरह रखा जा सकता है। प्रतिदिन समय पर निश्चित मात्रा में दूध के आने की राह जोहने वाले ग्राहकों को दूध नहीं मिला कि उनका नाराज होना बिल्कुल स्वाभाविक ही है। ऐसा होने से कभी कभी तो चन्दियाँ भी छूट जाती हैं। ऐसी आपत्ति को टालने के लिये



—अरे दुग्धमंदिर में रहते हुए भी यह इतना दुबला?
—जी, यह अभी अभी काम पर आया है; और दो चार महिने के बाद देखियेगा; आपके लिये, इसे पहिचानना तक मुश्किल होगा इतना तगडा बन जायगा...!

प्रति दिन जितना दूध दुहा जाता है उससे कुछ कम दूध की चन्दियाँ लगानी पड़ती हैं, जिससे ऐसा मौका भी नहीं आता और ग्राहकों को तकलीफ भी नहीं होती। लेकिन इस पद्धति से थोड़ा दूध जबरन बचाना पड़ता है। पाश्चिमी देशों में दुग्धव्यवसाय के साथ यांत्रिक पद्धति से दूध का पाऊडर (Milk-Powder) बनाना, कन्डेन्स्ड मिल्क (Condensed Milk) तैयार करना तथा टेबल बटर, चाकोलेट्स, चीज बनाना आदि जोड़ व्यवसाय करने की सुविधाएँ और चलाने के लिये काफी गुंजाइश होने के कारण यह व्यवसाय अधिक सुविधाजनक और लाभप्रद होता है। भारत में भी यदि यह धन्धा बड़े पैमानेपर किया जाय तो यंत्रसामग्री की सहायता से उक्त सुविधाएँ उपलब्ध की जा सकती हैं।

दुग्धव्यवसाय और उसके साथ किये जाने वाले अन्य व्यवसाय करना अकेले व्यक्ति की शक्ति के परे की बात है। अर्थात् उनको सम्हालने के लिये भिन्न भिन्न वेतन के नौकर तैयार करने चाहिये। चरवाहे से लेकर व्यवस्थापक तक नियुक्त करना पड़ता है; परन्तु ये सब काम अपनी देखरेख के नीचे उनके द्वारा सुचारु रूप से करवा लेना कुछ आसान काम नहीं। आगा पीछा करना या एक दूसरे से डाह करना तो अशिक्षित नौकरों का जन्मसिद्ध हक होता है। अतएव साम, दाम, दण्ड भेदादि नीतियों से काम लेते हुए उनसे काम लेना अत्यधिक कुशलता का काम है। सहकार्य करने के प्रत्यक्ष पाठ जब तक वे नहीं अपना लेते तब तक बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। सिर्फ नौकरों के भरोसे पर रहने से कभी कभी बड़ी फजीहत होती है। प्रसंगावधान और मन की संतुलन वृत्ति आदि गुणों का होना इस धन्धे के लिये नितान्त आवश्यक है। समय समय पर मालिकों की परीक्षा ही होती रहती है और इस परीक्षा में जो लोग अच्छी तरह उत्तीर्ण होते हैं वे ही यशस्वी डेअरी वाले हो सकते हैं। इस धन्धे का सन्तोषजनक फल मिलने के लिये काफी समय लग जाता है, इसे अच्छी तरह ध्यान में रख कर बहुत लगन से काम करना चाहिये।

७ गाय-भैंसों की परख

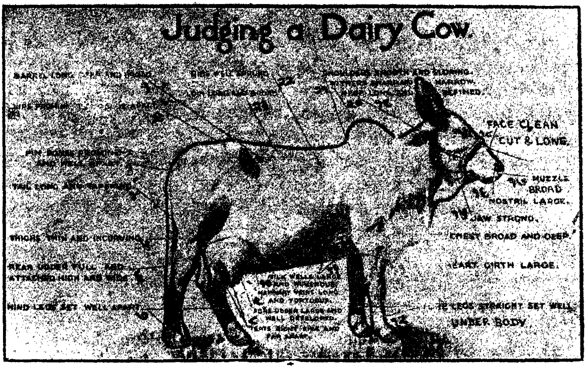
मवेशियों में छोटे बड़े अनेक दोष होते हैं। ब्याते समय कभी कभी जननेन्द्रिय उलटकर बाहर निकल आती है। यह दोष अधिक तर बूढ़ी और कमजोर गायों में पाया जाता है। इसलिये बूढ़े तथा अशक्त जानवरों को कभी भी मत खरीदो, चाहे वे सस्ते ही क्यों न मिलते हों। ऐसे जानवरों की जननेन्द्रिय अक्सर ब्याते समय बाहर निकल आती है। और यदि ऐसा न होकर जननक्रिया व्यवस्थित हो गई, तो भी उनके जेर के गिरने में बड़ी तकलीफ होती है। कभी कभी तो जेर गिरता ही नहीं। ऐसी हालत में उनकी कीमत से तो हाथ धोना ही पड़ता है; साथ ही मानसिक, शारीरिक अस्वस्थता तथा इलाजों के लिये हद से ज्यादा खर्च भी उठाना पड़ता है।

कई मवेशियाँ तो ब्याने के बाद अपने बछड़ों को पास ही नहीं आने देतीं, अर्थात् वे उनसे प्यार नहीं करतीं। भला ऐसे जानवर अपने मालिक को भी क्या दूध दे सकेंगी? कई गायें ऐसी भी होती हैं जिनके थनों से दूध ही नहीं निकलता। ऐसे अनेक दोष मवेशियों में पाये जाते हैं। इन सब बातों पर एक ही शर्तिया इलाज हो सकता है और वह यह कि ऐसे ही जानवर खरीदे जायँ, जिनमें उक्त दोष न हों और कम से कम उनके ब्याने को आठ या पन्द्रह दिन व्यतीत हो चुके हों। इनके लिये थोड़ी अधिक कीमत भी देनी पड़े तो कोई हर्ज नहीं।

कभी कभी तो चालाक लोग ऐसी भैंसें बाजार में बेचने के लिये लाते हैं, जिनके ब्याने को लगभग आठ-दस माह व्यतीत हो जाते हैं। वे ऐसी भैंसों के साथ तुरन्त ही ब्यायी हुई भैंस के पेड़ या पडिया को ले आते हैं। स्वभावतः भैंसें शान्त स्वभाव की होती हैं और वे बिना हाँ-ना किये ही उनको पिलाती रहती हैं। ऐसी भैंसें दो-तीन महिनों के बाद दूध देना बन्द कर देती हैं और खरीददार बेचारा फँस मरता है।

उच्च जाति के दुधारू जानवरों के लक्षण— अच्छी दुधारू गाय या भैंस बहुधा बिल्कुल गरीब, शान्त एवं तेजस्वी होती है। उसकी गर्दन पतली, आँखें बड़ी बड़ी और तेजस्वी, चौड़ा पुट्ठा (पीछे का भाग), दुग्धकोष्ठ रबर के ब्लेडर जैसा दूध से लबालब भरा हुआ (सिर्फ मांसल नहीं) होना चाहिये और दूध दुहने के बाद वह सिकुड़ कर बिलकुल छोटा सा हो जाने वाला एवं लचीला होना चाहिये। चन्द जानवरों का दुग्ध कोष्ठ सिर्फ बड़ा दिखाई देता है; किन्तु उसमें दूध बहुत ही कम प्रमाण में रहता है। ऐसे दुग्धकोष्ठों को मांसल ही समझना चाहिये। उच्च जाति के दुधारू जानवरों का शरीर मुलायम, रेशम जैसे बालों वाला तथा तेजस्वी होता है। कान तथा दुग्धकोष्ठ पर पीली सी छटा दिखाई देती है। दुग्धकोष्ठ का अग्रभाग भी काफी बड़ा होता है।

जानवरों की उमर कैसे पहिचानी जाय— साधारणतः सींगों के वलय (Rings) पर से गायों की उमर का ठीक ठीक अनुमान लगाया जा सकता है। सींगों पर जितने अधिक वलय होंगे, उतनी ही अधिक उमर समझना चाहिये। साधारणतः चार वर्ष की अवस्था के बाद सींगों पर पहिला वलय बनता है और फिर आगे प्रतिवर्ष एक एक वलय बनता जाता है। इस पर से जानवरों की उमर पहिचानी जा सकती है। गाय-बैलों के दाँतों पर से भी उनकी उमर का अन्दाजा लगाया जा सकता है; लेकिन भैंस की उमर उसके सींगों पर से नहीं जानी जा सकती। इसका निश्चय उनके दाँतो पर से ही किया जा सकता है। दाँत सटे हुए न होकर उनमें कुछ अन्तर दिखाई दे तथा उनकी जड़ें खुली दिखाई दें, तो निश्चित ही उनकी उतरती अवस्था समझना चाहिये। जहाँ तक हो सके तरुण जानवर ही खरीदने की कोशिश की जाय, जिससे दूध अधिक और उत्तम मिलेगा तथा उन्हें रोग आदि के होने की सम्भावना भी कम रहेगी।



उत्कृष्ट मवेशियों की जातियाँ

पंजाब, सिन्ध, गुजरात आदि प्रान्तों में पैदा होने वाली जानवरों की जातियाँ दुधारू होती हैं। अतः उन प्रान्तों के देहातों में घूम घूम कर अच्छे जानवर खरीदना ही ठीक होगा। दुधारू जानवरों की कौन कौन सी जातियाँ हैं और वे किन किन प्रान्तों में मिल सकती हैं, यह प्रारम्भ में बतला दिया गया है। लेकिन जानवरों की खरीदी करते समय काफी सतर्क रहना चाहिये, जिससे किसी भी हालत में नुकसान उठाने का मौका न आने पावे।

----**दूध की परख--** तुरन्त और निश्चित रूप से दूध की परीक्षा करने वाला यंत्र अभी तक किसी ने भी नहीं बनाया। लैक्टोमीटर की सहायता से पानी की मिलावट का कुछ थोड़ा सा पता चल सकता है। पर इस यंत्र से भी हमेशा सच्ची परीक्षा होगी ही यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

८ दूध दुहने का समय और जानवरों की खुराक

दूध दुहने का समय निश्चित करना ग्राहकों को दूध देने के समय पर ही अवलम्बित होता है। डेअरी शहर से अधिक फाँसले पर हो तो शहर में दूध लाने और वितरण करने में लगने वाले समय का विचार करते हुए दूध दुहने का समय निर्धारित करना चाहिये। दुहते समय धार निकालने के लिये जानवर के थन को केवल एक ही अँगुली से ताकत के साथ दबाने से कोई लाभ नहीं। पाँचों अँगुलियों की मुट्ठी बाँधकर उसके द्वारा दूध दुहने से जानवर को कष्ट नहीं होता। मवेशी भी सहर्ष और स्वेच्छा से पान्हा छोड़कर यथेष्ट दूध देती है। चारों थनों का पूरा पूरा दूध निकालना चाहिये। नौकर कभी कभी पूरा दूध दुह लेने में सुस्ती करते हैं, जिससे थनों में दूध रह जाता है और वह गठाना के रूप में जम जाता है। फलतः मवेशी एकदम दूध देना कम कर देती है और गठानों में सूजन आ जाने पर मवेशियाँ थन को हाथ लगाने नहीं देतीं। अतः इस सम्बन्ध से भी दक्षता रखने की आवश्यकता है। ब्याते ही मवेशी के थनों में बछड़े को लगा देने से पुत्र-वात्सल्य के कारण वह खुलकर पान्हा छोड़ती है और आगे चलकर उसकी यही आदत कायम हो जाती है।

जहाँ तक हो सके सबेरा होने के पूर्व ही दुधारू मवेशियों का दूध दुह लेना चाहिये, क्योंकि एक तो उस समय मक्खियों से कष्ट नहीं होता, और दूसरे शांत वातावरण होने के कारण मवेशियाँ भी बड़ी प्रसन्नता से दूध देती हैं। दूध दुहने के पहिले मवेशी को पेटभर साफ़ और ताजा जल पिलाना चाहिये। पानी पिलाने के बाद भैंस के शरीर पर एक दो बाल्टियाँ पानी डालकर उसे अच्छी तरह साफ धोकर दूध दुहना प्रारंभ करो।

दुहते समय दी जाने वाली खुराक

दुहते समय दी जाने वाली खुराक रात को ही भीगने के लिये पानी में डाल देना चाहिये। ४० तोले बिनौला, ४० तोले मूँगफली की खली, २० तोले अलसी की खली, २० तोले मिश्र चूनी (तुअर, चना, उड़द, मूँग आदि), २० तोले गेहूँ, ज्वार, कुलीथ अधपिसे हुए, १ तोला हल्दी, २ तोले नमक, ५ तोले तेल, २॥ तोले गुड़ और २॥ तोले हलका खोपरा, एकमें मिलाकर उसे यथेष्ट पानी में पकाने के बाद १२ घण्टे उसी में रहने दो। दूध दुहने के पूर्व जानवर को खिलाने के लिये यह एक उत्कृष्ट खुराक बन जावेगी। इस खुराक से दूध की मात्रा अवश्य ही बढ़ेगी। परन्तु जानवर की पचन शक्ति को देखते हुए खुराक कम-ज्यादा करने की ओर ध्यान देना आवश्यक है।

दूध दुहने के पूर्व खुराक जानवर के सामने खाने के लिये रखो और बछड़े को छोड़ दो, जिससे तुरन्त ही मवेशी पनहा जावेगी। फिर धीरे से जानवर के पिछले पैर बाँधकर बछड़े को थन से अलग कर गाय के पास ही बाँध दो। ऐसा करने से गाय पान्हा नहीं चुराती और बराबर दूध देती रहती है। चारों थनों का दूध निकाला न जावे। एक थन बछड़े के लिये रहने दो। यदि उतना भी दूध बछड़े के लिये आवश्यकता से अधिक जान पड़े, तो उस थन का भी आधा दूध निकाल लो। प्रथम आठ दिनों तक बछड़े को जरा कम ही दूध पिलाना चाहिये। वरना सफेद हैजे (White Cholera) की शिकायत होने का भय अधिक रहता है और फिर उसका बचना मुश्किल हो जाता है। अतः बछड़े को कितना दूध पिलाया जाना चाहिये, इसका ज्ञान कर लेना अत्यंत आवश्यक है। तीसरे चौथे दिन के बाद गाय के पनहाने पर बछड़े को धीरे धीरे माँ से दूर बाँधने की आदत डालते जाओ, जिससे आगे चलकर वह केवल खुराक पर ही पनहाने लगती है। ऐसी आदत पड़ जाने से बछड़े के मर जाने पर भी गाय के पनहाने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित

न होगी। बछड़े के बिना गाय का पनहाना सचमुच ही अस्वाभाविक है। अतएव बछड़े के मरने पर चमार के द्वारा मृत बछड़े की खलरी निकाल कर उसमें घासफूस भरकर गाय के सामने चाटने के लिये रख दिया जाय। गाय-भैंस उसको देखकर हुँकारती और चाटती जाती है तथा तुरन्त ही उसके थन में पुत्र-प्रेम से दूध आ जाता है। फिर दाने की टोकरी एकदम गाय के सामने रख देने से वह खाने की धुन में हमेशा की तरह दूध देने लगती है। इस प्रकार आठ-पन्द्रह दिन आदत डालते रहने से फिर गाय केवल खुराक को देखकर आप ही आप दूध देने लगती है और बछड़े की याद भूल जाती है।

दुहने के बाद जानवर को आठ-दस पौंड अच्छी हरी घास खिलाओ। हरी घास न हो तो कड़बी, भूसा, पयाल या सूखी घास भी दे सकते हैं। इतना खाने के बाद सुबह ७ बजे जंगल में चरने के लिये रवाना कर दो। शाम को ६ बजे जंगल से लौटने पर पुनः ८-१० पौण्ड हरी घास, कड़बी भूसा या पयाल खाने के लिये डाल दो। घास खाने के बाद जानवर को कुछ देर तक आराम करने दो और फिर दुहने की तैयारी करो। दुहने के पहिले पानी अवश्य पिलाया जाय और सामने खुराक रखकर सुबह की तरह दूध दुहना शुरू किया जावे। रात के दस बजे सोने के पूर्व एक बार फिर हमेशा की तरह आठ-दस पौण्ड घास, कड़बी, भूसा आदि डालो। यदि जानवर जंगल न जाता हो तो दुपहर को दो बजे हमेशा की तरह पानी और चारा दो। जानवर को शाम-सुबह खरेरा करना और सप्ताह में एक बार नहलाना अत्यन्त आवश्यक होता है। दिल लगाकर सेवा करने से उसका प्रतिफल दुधारू मवेशियाँ अवश्य ही देती हैं। मवेशियों को वर्षभर हरी घास खाने के लिये चाहिये। उत्तम दर्जे की खिलाई और चारा देने से जानवर हृष्टपुष्ट होते हैं और उनकी बाढ़ भी सभी दृष्टियों से अच्छी होती है।

दुहते समय ध्यान देने योग्य सूचनाएँ

हमेशा यह अनुभव किया जाता है कि दुहने के लिये बैठते ही एक तो गाय पिछाड़ी मारती है अथवा पान्हा चुरा लेती है। परन्तु ऐसा क्यों होता है? निर्धारित समय पर दुहने के लिये गाय के थनों में दूध तो अवश्य तैयार रहना चाहिये; किन्तु वह निकलता क्यों नहीं? गाय उसे क्यों रोककर रखती है?

यद्यपि यह सच है कि जानवर को निर्धारित समय पर दूध देना ही चाहिये; किन्तु इसके लिये दूध दुहने वाले को भी अनेक बातों पर ध्यान आवश्यक होता है। गाय के थनों के ऊपर जो दुग्धकोष्ठ होता है, उसमें दूध बनाने वाली पेशियाँ (दुग्धकोटर) दूध बनाती रहती हैं। इनकी क्रियाशीलता पर ही दूध की धार निकलना अवलम्बित होता है। जिस प्रकार किसी

स्वादिष्ट पदार्थ को देखते ही अपने मुँह में पानी आ जाता है, ठीक उसी तरह अपने वत्स (बछड़े) को देखते ही अथवा दुहने की तैयारी, दुहने वाले परिचित व्यक्ति, खुराक, चारे आदि को देखते ही गाय पनहाने लगती है। जितने जल्दी दूध निकलने लगता है उतने ही जल्दी वह सूख भी सकता है, जिसके लिये किसी भी छोटे से कारण का होना पर्याप्त हो सकता है। अतः गाय के अच्छी तरह पनहाने एवं अच्छी तरह दूध निकलने के लिये निम्न सूचनाओं पर अमल करना आवश्यक होता है—

(१) पहिली ही बार व्याये हुए जानवर का दूध जरा धीरज से ही दुहना चाहिये। उसके साथ जबरदस्ती न की जाय।

(२) दुहते समय किसी भी अपरिचित व्यक्ति को वहाँ मत आने दो।

(३) दुहने के पूर्व अथवा पश्चात् गाय को मत मारो।

(४) जहाँ तक हो सके एक ही आदमी हमेशा दुहने का कार्य करे। ऐसे किसी भी व्यक्ति को गाय के पास मत आने दो, जिसे देखकर उसे दहशत अथवा डर मालूम हो।

(५) ठीक दुहते समय ही थनों को सहलाना अच्छा नहीं है। ऐसा करने से पर्याप्त मात्रा में दूध तैयार नहीं होता।

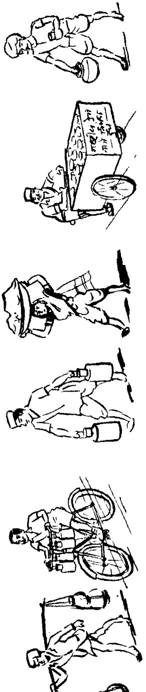
(६) जिस गाय का दुग्धकोष्ठ दूध से अच्छा भरा हुआ दिखाई दे, उसी गाय को प्रथम दुहना चाहिये।

(७) दूध शीघ्र ही दुह लिया जावे। अधिक विलंब करना अच्छा नहीं है।

(८) दुहने का कार्य समाप्त होते ही अन्तिम गाढ़े दूध के बूँद निकालने के लिये अधिक समय मत लगाओ।

—श्री वामनराव दाते, बी. एस्सी. (कृषि)

—दूध का रंग नीला-सा दिखाई देता हो, तो समझ लेना चाहिये कि उसमें पानी अवश्य ही मिलाया गया है।



९ गाभिन और व्यायी हुई मवेशियों की हिफ़ाज़त

गाय का दूध देना बंद होने पर अथवा उसके गाभिन होने पर उसकी ओर जितना ध्यान देना आवश्यक होता है, वास्तव में उतना नहीं दिया जाता। जब तक गाय दूध देती है तब तक उसको दाना-पानी, चारा आदि समय पर दिया जाता है; किन्तु यह प्रथा ठीक नहीं है। गाभिन गाय को थोड़ी बहुत खुराक देते रहना आवश्यक होता है। उसके चारे पानी का भी अच्छा प्रबन्ध रखा जाय। यह सारा खर्च और कष्ट कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। गाभिन गाय की अच्छी हिफ़ाजत होने पर व्याते समय उसको तनिक भी कष्ट नहीं होता। जनन-क्रिया आसानी से हो जाती है और स्वस्थ गाय का बछड़ा भी स्वस्थ ही पैदा होता है। गाय दूध भी शीघ्र ही देने लगती है। व्याने के पूर्व यदि गाय कमजोर हो तो पहिले महिने में वह दूध भी बहुत ही कम देती है। महिने भर खिलाई मिलने के बाद आगे उसका दूध बढ़ता जाता है। गाभिन होने के नौ महिने और नौ दिन के बाद गाय व्याती है। भैंस को दस महिने और दस दिन लगते हैं। यदि जानवर के गाभिन रहने की तारीख लिखकर रखी जाय, तो उसके व्याने का निश्चित समय मालूम किया जा सकता है। कभी कभी एक-दो दिन का अन्तर हो जाना संभव होता है। व्याने के दिन का अन्दाज होने पर जानवर की देखभाल और उसकी दवादारू का प्रबन्ध करने में सुभीता होता है। गाय अथवा भैंस की पूँछ के ऊपरी छोर में तीन मनके दिखाई देने पर यह समझना चाहिये कि अब २४ घण्टे के अन्दर ही उसके व्याने का समय आ गया है। व्याने के एक दिन पहिले जानवर को अलसी का पाव-देढ़ पाव तेल (वजन से) जरूर पिलाओ, जिससे व्याते समय उसे कुछ भी कष्ट नहीं होता। कभी कभी बच्चा पेट ही में मर जाता है और व्याने का समय निकल जाने पर मवेशी अस्वस्थ हो जाती है। ऐसे समय पर अधिक सावधानी से काम लेना चाहिये। समय न खोते हुए तुरन्त ही अच्छे पशु-चिकित्सक डॉक्टर अथवा किसी जानकार व्यक्ति को बुलवाकर गाय की जननेन्द्रिय में हाथ डालकर मृत बच्चे को बाहर निकाल लिया जाय। इस समय गाय को अधिक कष्ट होता है और उसे औषधि की अत्यंत आवश्यकता होती है।

गाय को व्याने के पूर्व एक महिने तक उबाला हुआ दाना, जितना वह खा सके, खिलाना चाहिये। प्राय: एक जून में आठ या दस छटाक मोटा पीसा हुआ अनाज (ज्वार, बाजरा, गेहूँ, तुअर, मका, उड़द, कुलैथ, मूँग आदि) पकाकर शाम-सुबह खिलाओ। केवल एक ही अनाज देने के बदले कई तरह के अनाज एक साथ मिलाकर भी दिये जा सकते हैं। उसमें १ तोला हल्दी, ३ तोले नमक और ५ तोले तेल मिलाओ। इससे जानवर के थनों में यथेष्ट दूध आता है।

व्याने के बाद

२० तोले दूधिया की लकड़ी, २० तोले भैंस-घुँटी, २ तोले हींग, २० तोले नमक, २५ तोले जीरा, २॥ तोले सोंठ, २॥ तोले शेप, २॥ तोले बड़ी शेप, ४० तोले मेथी, ८० तोले गुड़, ५ तोले आंबी हल्दी, ५ तोले फिटकिरी और १ तोला कपूर। इन चीजों को पीसकर एक में मिला लो और उसमें ६ सेर पानी डालकर एक घण्टे तक उबलने दो। यह गाय के व्याने के बाद पहिले दस दिनों में पिलाने के लिये एक अच्छा काढ़ा तैयार हो जावेगा। यह काढ़ा उसीके ताजे दूध में सुबह-शाम आधा आधा सेर पिलाओ। काढ़ा छानने के बाद शेष बचा हुआ भाग भी रोज थोड़ा थोड़ा उसकी खुराक के साथ दिया जाय। गाय के व्याने के बाद भी पहिले की ही तरह और उसी मात्रा में

(पृष्ठ नं. ५९ पर देखिये।)

१० डेअरी का दैनिक कार्यक्रम

डेअरी के कर्मचारियों को चाहिये कि वे प्रतिदिन प्रातःकाल ठीक तीन बजे उठकर अपने अपने कामों में लग जायँ। समय पर जागने के लिये अलार्म की घड़ी रखी जाय अथवा दो-तिन मुर्गे (नर) पाले जायँ। मुर्गा प्रातःकाल ठीक तीन बजे से बाँग देने लगता है और हर १५-२० मिनट के बाद सुबह सूर्योदय होने के समय तक बाँग देता रहता है।

जागते ही—(१) सभी दुधारू जानवरों को साफ पानी पीने के लिये दिया जावे।

(२) यदि दूध निकालने और रखने के बर्तन एक दिन पूर्व ही साफ मलकर रखे गये हों, तो भी दूह दुहने के पूर्व पुनः एक बार अच्छी तरह पानी से धो लिये जावें। इसमें किसी भी तरह की गलती या आनाकानी न की जाय।

(३) इसके पश्चात् स्वयं अपने सामने दूध दुहवा लिया जावे। दुहने के तरीके एवं दुहते समय पाली जाने वाली सावधानियों के विषय में पहिले ही सूचित किया जा चुका है। ढक्कन वाले बर्तनों में ही दुहा हुआ दूध जमा करना चाहिये, जिससे उसमें मक्खियाँ गिरने न पावेंगी। बहुत तड़के दूध दुहने से मक्खियों का त्रास नहीं होता। दूध दुहने के बाद उसे छानकर साफ तालाबन्द पीतल के टोंटीवाले डिब्बों में बन्दकर ग्राहकों के पास भेजना चाहिये। आवश्यकता प्रतीत होने पर ताले पर सील भी लगाई जा सकती है।

(४) दूध दुहने के बाद जानवरों को तुरन्त चरने के लिये छोड़ दो। और नौकरों के द्वारा गौओं के गोष्ठों की साफ सफाई करवा लो।

(५) साफ सफाई के बाद नौकरों को एक घण्टे के लिये (कलेवा करने के लिये) छुट्टी दे दो। गाओं और बछड़ों के चरवाहों को दुहने के समय काम में मत लगाओ। ऐसा करने से वे अपने प्रातः कालीन कार्यों से निपटकर कलेवा आदि करके ठीक समय पर जानवरों को चराने के लिये जंगल में ले जाने के लिये तैयार रहते हैं। दुधारू जानवरों और उनके बछड़ों के चरने का प्रबन्ध अलग अलग होना चाहिये। एक साथ चरने के लिये छोड़ने पर बछड़े अपनी मा का दूध पी लेते हैं। दुधमुहे बछड़ों के चरने का प्रबन्ध गोष्ठ के पास ही रखा जावे। उन्हें अधिक घूमने फिरने न दिया जाय। नहीं तो वे हृष्टपुष्ट न हो सकेंगे।

(६) कलेवा करने के बाद नौकरों से दूध के बर्तन मलवाकर साफ धुलवा लिये जावें।

(७) दुधमुहे बछड़ों के गोष्ठ के हौजों में अच्छा साफ जल भरकर रख दो। बिनौला, खली, दाना आदि भिगोकर रखो। दुपहर को आराम करने के लिये वापिस आने वाले दुधारू जानवरों और बछड़ों के लिये उनकी चरनी में घास, कड़बी, भूसा, हरी पत्तियाँ भर दो। यदि गोष्ठों में कहीं टूट फूट हो गई हो तो तुरन्त सुधरवा लेना चाहिये।

(८) इसके पश्चात् बीच के दो-तीन घण्टों में नौकरों के द्वारा चरोखरों से घास आदि मँगवा लो।

(९) दुपहर में जानवर और बछड़े वापिस आने के बाद गोष्ठों में बैठकर आराम के साथ चारा खाते हैं।

(१०) बारह से दो बजे तक नौकरों को बीच की छुट्टी दी जावे। इस समय वे नहा धोकर भोजन आदि से निपटकर आराम करते हैं।

(११) फिर दो बजे से सुबह जैसा ही कार्यक्रम शुरू किया जाय। दूध के सारे बर्तन पुनः मलकर धो लिये जावें और दूध दुहना प्रारम्भ किया जाय। दूध दुहना समाप्त होते ही लगभग चार बजे वितरण के लिये भेज दो।

(१२) दूध दुहना समाप्त होते ही दुधारू जानवरों और बछड़ों को जंगल में चरने के लिये छोड़ दो। जंगल में बहता हुआ पानी (नदी या नाला) हो तो अच्छा ही है और यदि न हो तो छोड़ते

अथवा वापिस लौटते समय उन्हें कुएँ पर पानी पिलाने का प्रबन्ध अवश्य ही करना चाहिये। पानी के बारे में जानवरों को किसी भी तरह का कष्ट न होने पावे।

(१३) दुपहर को जानवर और बछड़ों के जंगल में चले जाने के बाद पुनः साफसफाई, गोबर उठाना, दाना, खली आदि भिगोना, बचे हुए दूध का खोआ अथवा मिठाई बनाना, चरनी चारे से भरना, घास लाना आदि काम नौकरों से करवाया जावे।

(१४) शाम को ७ बजे जानवर और बछड़ों के वापिस आने के बाद नौकरों के द्वारा खुरेरा करवाना चाहिये और फिर सभी नौकरों को भोजन के लिये एक साथ ही छुट्टी दे देना चाहिये।

(१५) नौकरों को रात के साढ़े नौ–दस बजे जानवरों के पास सोने के लिये बुलवाना चाहिये।

(१६) रात के दस बजे जानवरों के सामने पुनः एक बार घास–कड़बी डलवा दो और बाद में नौकरों को सोने के लिये इजाजत दे दो। फिर दूसरे दिन प्रातः काल तीन बजे से उसी दैनिक कार्यक्रम का प्रारम्भ करो। यह धन्धा बड़ी तकलीफ़ और झंझट का है। आलसी और कामचोर आदमी को इस धन्धे में सफलता मिलने की कोई आशा नहीं है।

(पृष्ठ नं. ५७ का शेषांश)

पकाये हुए दानों की खुराक जारी रखो। उसमें नमक, तेल, हल्दी और गुड़ भी मिला लो। प्रथम दस दिनों के बाद इस खुराक की मात्रा थोड़ी थोड़ी बढ़ाओ। पके हुए दाने के साथ थोड़ा बिनौला, खली और चूनी भी आवश्यकता के अनुसार दो। परन्तु आवश्यकता से अधिक खुराक कभी भी न दी जावे। ऐसा करने से कभी कभी जानवर खतरे में पड़ जाता है। प्रायः एक महिने तक एकदम खुराक बढ़ाई न जावे। धीरे धीरे ही उसकी मात्रा बढ़ानी चाहिये। एक महिने के बाद मवेशियों में पर्याप्त शक्ति आ जाती है। फिर यथेष्ट खुराक, दाना-पानी देने से वह यथेष्ट दूध देगी।



परिवार में प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयुक्त जानकारी

बहुगुणी दूध के मूलद्रव्य और

दूध के सम्बन्ध से उपयुक्त जानकारी

मनुष्य की प्रकृति पर विजय

गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि जानवरों के दूध का परीक्षण करने से उनके दूध में किसी भी तरह की समानता दिखाई नहीं देती। रंग, गंध और रुचि में स्पष्ट फर्क दिखाई देता है। यथार्थ में किसी भी प्राणी के स्तनों में दूध के निर्माण होने की जो प्राकृतिक योजना है, वह सिर्फ उसकी संतान के संवर्धन तथा पोषण के लिये ही होती है; दूसरों के लिये कभी नहीं। परन्तु मनुष्य अपने बुद्धिबल से इस प्राकृतिक योजना पर विजय प्राप्त कर सभी दुधारू प्राणियों का दूध बिना किसी दिक्कत के अपने लिये उपयोग में ला रहा है।

दूध के मूल द्रव्य

हिंदुस्थान की प्रमुख मवेशियों के दूध का पृथक्करण करने से उनमें पाये जाने वाले मूलद्रव्यों के निम्नांकित प्रमाण दिखाई देते हैं। (अंक प्रतिशत प्रमाण के हैं)

इन अंकों से किन्हीं भी दो प्राणियों के दूध में कौनसा फर्क है, यह सरलतापूर्वक समझ में आ सकता है। इसी तरह इन अंकों से यह भी जाना जा सकता है कि एक जाति के जानवर का दूध दूसरी जाति के जानवर के दूध जैसा किस तरह बनाया जा सकता है। निम्न तख्ते में मूलद्रव्यों के प्रमाण सर्वसाधारण तथा स्थूल मान से दिये गये हैं; क्योंकि ये प्रमाण सचमुच में जानवरों की खिलाई या खुराक पर निर्भर होते हैं। ऐसा दिखाई दिया है कि कालमानानुसार भी जानवरों के दूध के दर्जे में फर्क पड़ता जाता है।

दूध में पाये जाने वाले जीवनसत्व—दूध में अ, ब, क और ड जीवनसत्व पाये जाते हैं। लेकिन सभी जानवरों के दूध में इनका पाया जाना आवश्यक नहीं है। ये सभी सत्व जानवरों के खाये हुए चारे पानी के द्वारा ही दूध में पैदा होते हैं।

प्राणी	जड़त्व या घनता (Density)	पानी	घन पदार्थ				कुल घन पदार्थ
			अल्बुमिनॉईड्स	स्निग्ध पदार्थ	शर्करा	इतर	
गाय —	१·०२६ से १·०३५	८५·५ से ८७·१	३·४ से ४	३·० से ३·८५	४·५ से ५·२	०·६५ से ०·७८	१२·९ से १४·५
बकरी —	१·०३ से १·०३६	८४·५ से ८०·५	३·६ से ६·२	३·२ से ३·९५	४·० से ५·३	०·६ से ०·८२	१५·५ से १९·५
भैंस —	१·०३८ से १·०४२	७७·५ से ८२	५·३ से ६·१५	६.५ से ६·७५	५·० से ५·४	०.७ से ०·९५	१८ से २२·५
गधी —	१·०२३ से १·०३५	९०·४३ से ९०·८४	१·६ से २	१·३ से १·५	६·२ से ६·८	०·४ से ०·४८	९·१६ से ९·५७
स्त्री —	१·०३ से १·०३४	८६·५ से ८८·५	१·० से १·६५	२·० से ३·६५	५·८ से ६·५	०·१५ से ०·३५	११·५ से १३·५

'ड' जीवनसत्त्व इस नियम का अपवाद है; क्योंकि वह जानवरों के शरीर में ही पैदा होता है। 'अ' और 'ड' सत्व मेदीद्राव्य (Fat-soluble) हैं; इस कारण वे मक्खन और घी में दिखाई देते हैं। 'ब' और 'क' सत्व जलद्राव्य हैं। दूध में 'क' सत्व की मात्रा बहुत ही अल्प होती है; अतः छोटे बच्चों को यदि दूध ही पर रखने का समय आया, तो उन्हें दूध के साथ मौसंबी, संतरे या टमाटर का ताजा रस पिलाना लाभदायक तथा आवश्यक होता है। वास्तव में दूध का रंग सफेद होता है; लेकिन पानी मिलाने से वह नीला सा रंग धारण कर लेता है। गाय के दूध का रंग कुछ पीला सा दिखाई देता है। उसी तरह गाय के दूध से बनाया हुआ मक्खन और घी भी पीले से रंग के होते हैं। गाय का दूध भैंस के दूध से पतला होता है, अर्थात् उसका घनत्व (Density) भैंस के दूध से कम होता है। चालाक दुग्धव्यवसायी इससे फायदा उठाते हैं। वे भैंस के दूध में पानी मिलाकर उसे गाय का दूध बताकर बिना किसी हिचकिचाहट के बेचते हैं। गाय के दूध जैसी पिलाहट आने के लिये उसमें थोड़ा सा हल्दी का चूर्ण भी डाल देते हैं, जिससे भैंस का दूध भी गाय के दूध जैसा ही पिलाहट लिये हुए दिखाई देता है।

दूध में शक्कर की मात्रा (Milk sugar) - दूध में जो शक्कर की मात्रा पाई जाती है, उसे दुग्ध शर्करा (Milk Sugar) कहते हैं। वह सरलता से पच जाने वाली होती है। दूध से दही तैयार होते समय यह शर्करा लेक्टिक, ब्युटिरिक आदि आम्लों में रूपान्तरित होती है। ताजा छाँछ पाचक होता है; इसका कारण भी लेक्टिक आम्ल ही है।

दूध में होने वाले प्रथिन * (Proteins) द्रव्य— दूध प्राणिजन्य पदार्थ है। अन्य प्राणिजन्य पदार्थों के प्रथिनों की भाँति ये प्रथिन भी आसानी से हजम होते हैं। छोटे बच्चों का वजन पहिले वर्ष में सामान्यतः दुगना हो जाता है (कम से कम होना भी चाहिये)। इसका मूल कारण प्राकृतिक योजना के अनुसार उनके शरीर की वृद्धि के लिये दूध में होने वाले प्रथिनों का उपयोग में आना ही है।

इतर धातुओं की पर्याप्त मात्रा—दूध में केल्शियम्, फास्फरस, पोटेशियम्, लोह आदि धातुएँ भी प्रचुर मात्रा में दिखाई देती हैं। आधुनिक अनुसन्धानों के द्वारा तो उसमें एल्युमिनियम्, क्रोमियम्, मेगनीज, जस्ता, व्हेनाडियम्, चाँदी आदि अनेक धातुओं के अत्यंत सूक्ष्म प्रमाण पाये गये हैं। आज यह कौन बता सकता है कि ये ही सूक्ष्म मात्रा में पाई जाने वाली धातुएँ मनुष्य के लिये उपयुक्त सिद्ध होंगी।

कच्चा दूध

गाय व्याने के बाद प्रथम दो तीन दिन तक प्राप्त होने वाला दूध ही कच्चा दूध कहलाता है। इसके गुणधर्म नित्य के दूध से भिन्न होते हैं। इस दूध का रंग कुछ पिलाहट और किंचित ललाई लिये हुए भी रहता है। उसका स्वाद भी जरा खारा सा प्रतीत होता है। ऐसे दूध में उसके मूलद्रव्यों का प्रमाण साधारणतया नीचे लिखे अनुसार रहता है—

(घनता (Density) १.०४–१.०८)

पानी	७१.७ प्रतिशत	स्निग्ध पदार्थ	३.० प्रतिशत
प्रथिन	२१.० ,,	शर्करा	२.५ ,,
क्षार	१.८ ,,		

स्त्रियों का दूध

आजकल की बहुत सी सुशिक्षित स्त्रियाँ अपने बच्चों को स्तनपान कराना जंगलीपन समझती हैं। उनके दिलों में इस गलत धारण ने घर बना लिया है कि ऐसा करने से शरीर सौंदर्य कम होता है। लेकिन वे इस बात को भूल जाती हैं कि पोषण की दृष्टि से मा के दूध जैसा अन्य कोई भी दूध उपयुक्त नहीं होता। अमेरिका के शिकागो में किये गये अनुसंधानों से यह बात निश्चित हो गई है कि कृत्रिम खाद्य पर या माता के दूध के अतिरिक्त अन्य किसी भी दूध पर बढ़ने वाले

* इस नाइट्रोजन युक्त पदार्थों का स्नायुओं की वृद्धि के लिये शरीर में होना आवश्यक होता है।

बालकों की मृत्युसंख्या साधारणतः माता के दूध पर बढ़ने वाले बालकों की मृत्युसंख्या से ५६ गुने अधिक होती है। यथार्थ में मा का दूध उनके बालकों के लिये ही प्रकृति ने पैदा किया है। वह शुद्ध, स्वच्छ तथा ताजा होता है। उसमें किसी भी रोग जन्तुओं का प्रवेश होना असम्भव है। इसीलिये कम से कम बच्चों के स्वास्थ्य के लिये ही माता को उन्हें अपना दूध अवश्य पिलाना चाहिये।

स्त्रियों के दूध में शर्करा का प्रमाण अन्य प्राणियों के दूध में होने वाले प्रमाण की अपेक्षा अधिक होता है और इसीसे बच्चा अपनी माता का दूध अधिक प्यार से पीता है। गाय या भैंस के दूध को बिना शक्कर मिलाये ही वह ग्रहण नहीं करता। इसका कारण उसमें शक्कर का प्रमाण कम होना ही है।

जीवनद्रव्यों और खनिजद्रव्यों का प्रमाण माता के आहार पर निर्भर होता है। अतएव उन्हें चाहिये कि वे जब तक बच्चा उनका दूध पीता रहता है तब तक ऐसा ही आहार सेवन करें, जिसमें केल्शियम्, फास्फरस, लोह, खनिज द्रव्यों तथा जीवन द्रव्यों का प्रमाण अधिक मात्रा में हो। तभी उनके दूध से बच्चों को अधिक फायदा होगा, अन्यथा नहीं।

दूध सभी के लिये आवश्यक वस्तु है

मानव जीवन के लिये दूध एक आवश्यक अन्न है। आहार शास्त्रज्ञ इस अन्न को पूर्णान्न समझते हैं; क्योंकि इसमें शारीरिक पोषण और वृद्धि के लिये आवश्यक सभी द्रव्य सम प्रमाण में पाये जाते हैं। दूध में जो प्रोटीन युक्त पदार्थ पाये जाते हैं, वे पचने में आसान तथा गुणों की दृष्टि से श्रेष्ठ होते हैं। उसमें होने वाले अ जीवन द्रव्य से शरीर वृद्धि में मदद पहुँचती है, स्नायु, हड्डियाँ, दाँत आदि मजबूत बनते हैं, शरीर बलिष्ठ होता जाता है और स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। दूध में यह सत्व प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसीलिये छोटे बच्चों और तरुण मनुष्यों के आहार में दूध अत्यधिक महत्व का स्थान रखता है। इंग्लेण्ड और अन्य पश्चिमीय राष्ट्रों में किये गये प्रयोगों पर से यह निश्चित हुआ है कि बच्चों के आहार में दूध का प्रमाण बढ़ाने से उनकी ऊँचाई तथा वजन के बढ़ने में काफी मदद पहुँचती है। एक जगह किये गये विशिष्ट प्रयोग में कुछ बच्चों को एक साल तक नित्य ही उनके आहार में एक पाइंट (लगभग ४-५ कप) दूध देने का प्रबन्ध किया गया था। एक ही वर्ष में इन बच्चों की ऊँचाई पौने तीन इंच और वजन लगभग सात पौण्ड बढ़ गया। इसके विरुद्ध जिन बच्चों को सिर्फ उनके नित्य के आहार पर ही रखा और अधिक मात्रा में दूध नहीं दिया, उनका वजन उतने ही समय में सिर्फ चार पौण्ड बढ़ा और ऊँचाई भी सिर्फ डेढ़ इंच ही बढ़ी हुई दिखाई दी।

दूध एक ऐसा अन्न पदार्थ है, जो छोटे बच्चों से लेकर वृद्ध मनुष्यों तक सभी को रुचिकर मालूम होता है तथा लाभ पहुँचाने वाला होता है। यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि माता के दूध के अतिरिक्त छोटे बच्चों के लिये दूध जैसा दूसरा कोई भी अन्न पदार्थ नहीं है। माता के दूध की बराबरी दूसरा कोई भी दूध नहीं कर सकता, यह बात तो बिलकुल सही है; लेकिन जहाँ माता का दूध मिलना ही दुर्लभ है वहाँ जानवरों का दूध ही काम देता है। बीमार मनुष्यों के आहार में दूध अत्यावश्यक है। छोटे बच्चों, तरुणों जैसा ही वृद्धों के लिये भी दूध स्वास्थ्यप्रद महसूस किया गया है। तात्पर्य यह कि दूध सभी लोगों के लिये आवश्यक वस्तु है।

मक्खन, दही, छाँछ, घी आदि अन्य पौष्टिक पदार्थ दुग्धजन्य ही हैं। दूध के साथ ही अधिक मात्रा में इन पदार्थों का आहार में समावेश किया जाय, तो शरीर और स्वास्थ्य उत्तम रहेगा और इनके अच्छे रहने से जीवन में अधिक आनन्द, अधिक कार्यक्षमता तथा दीर्घायु का लाभ प्राप्त हो सकेगा।

दूध में छिपकर बैठने वाली अस्वच्छता

दूध एक बहुगुणी पदार्थ है; लेकिन उसकी

उपयुक्तता; दूध की उत्तमता, निःरोगिता और शुद्धता पर ही अवलंबित होती है। दूध शुभ्र रंग का होता है। साधारणतया सभी सफेद वस्तुएँ अस्वच्छता को बड़ी ही सफाई के साथ प्रगट कर देती हैं; परन्तु अस्वच्छता को छिपाने में दूध बड़ा ही कुशल है। बाह्यत: बिलकुल स्वच्छ और निर्मल दिखाई देने वाले दूध के अन्तरंग में कितनी अस्वच्छता छिपी रह सकती है, इसका अनुमान बिना प्रत्यक्ष प्रयोग किये नहीं किया जा सकता। दूसरों के कहने या विश्वास दिलाने पर यह बात मान्य नहीं की जाती। दूध में छिपकर बैठने वाले इन गन्दे पदार्थों में से कुछ तो उसमें घुली हुई अवस्था में रहते हैं और कुछ पृष्ठ भाग के नीचे तैरते हुए रहते हैं; लेकिन बाहर से दूध बिलकुल स्वच्छ तथा निर्मल ही दिखाई देता है।

स्वच्छ और शुद्ध दूध मिलना असम्भव ही है

वर्तमान काल में दुधारू जानवरों की जिस भाँति देखभाल की जाती है और दूध निकालने तथा उसके वितरण करने की जो पद्धतियाँ प्रचलित हैं, उन सब के बारे में विचार किया जाय तो यह सहज ही समझ में आ जावेगा कि अपने घर आने वाले दूध में कितनी गंदगी रहती है। साधारणत: दुग्धव्यवसायी जिस जगह अपने जानवर बाँधते हैं, वह बहुत ही गन्दी रहती है। वहाँ गोबर, मूत्र, कूड़ाकचरा, घास, मक्खियों आदि की अधिकता पाई जाती है। इसके सिवाय मवेशियों के शरीर से झड़े हुए बाल तथा उनके शरीर में लिपटी हुई मलमूत्रादि की गन्दगी का दूध निकालते समय दूध के बर्तन में गिरना स्वाभाविक है। दूध निकालने वाले के हाथ भी गन्दे ही रहते हैं। एक दिन पहिले धोकर रखे हुए दूध निकालने के बर्तन दूध निकालते समय पुनः न धोने से दूध में गन्दगी का प्रवेश होना स्वाभाविक होता है; लेकिन यदि वे साफ धोये भी गये हों, तो उनके धोने के उपयोग में लाये हुए पानी के साथ गन्दगी बर्तन में प्रवेश कर बैठती है। दूध जमा करने के बर्तन के खुले रहने से भी गन्दगी उसमें प्रवेश कर सकती है। इन सब असावधानियों से दूध में गन्दगी का प्रमाण लगातार बढ़ता ही जाता है। कहीं कहीं तो दूध दुहने के समय पर झाड़ना-बुहारना भी चालू रहता है। जानवरों तथा मनुष्यों के आने जाने से गोष्ठ में कीचड़ इधर उधर फैल जाता है और दूध के द्वारा थोड़ा बहुत अपने घर में भी पहुँच जाता है। यह दुग्धव्यवसाय की हालत सिर्फ हिन्दुस्थान में ही नहीं है; किन्तु अमेरिका जैसे उन्नत राष्ट्रों में भी तीस वर्ष पहिले यही हालत थी। यह एक अमेरिकन दुग्ध विशारद (Dairy Expert) के आगे उद्धृत किये गये उद्गारों से समझ में आ जावेगा। वे कहते हैं— * "यदि पीने का पानी भी दूध जैसा ही [अर्थात् दूध दुहकर जैसा आपको पहुँचाया जाता है, उसी तरह] मिलता, तो उसको पीने के लिये बहुत ही कम लोग तैयार होते।" तात्पर्य यह कि आपको जो दूध मिलता है, उसके स्वच्छ और शुद्ध होने के बदले, उसका अस्वच्छ और अशुद्ध होना ही अधिक सम्भव है।

दूध को अच्छी तरह (जंतुघ्न होते तक) उबालो

दूध में और भी एक दोष होता है, अर्थात् उसके साथ टाइफाइड, राजयक्ष्मा, कालरा आदि घातक रोगों के जन्तुओं का आना अधिक संभव होता है। बहुधा बीमार जानवरों के दूध, कभी कभी दूध से सम्बन्ध रखने वाले लोगों, दूध दुहने वालों और कभी कभी दूध वितरण करने वालों के द्वारा ही इन जंतुओं का प्रसार होता है। दूध से अनेक जानवरों तथा मनुष्यों का सम्बन्ध होने की वजह से यह धोखा कहाँ से आवेगा, इसका ठीक ठीक पता लगाना मुश्किल ही होगा। दूध में पानी मिलाना तो हमेशा की ही बात है। इस पानी के द्वारा भी दूध में जन्तुओं का प्रवेश हो सकता है। इसीलिये बिना आवश्यक सावधानी के जन्तुरहित दूध की आशा करना व्यर्थ है।

---

* Modern Milk Problem-Macnutt
Macmillan & Co.

सौभाग्य है कि हम लोग कच्चा दूध उपयोग में नहीं लाते। फिर भी आजकल जिस तरीके से दूध तपाया जाता है, उससे भी दूध में होने वाले जन्तुओं का कहाँ तक नाश होता होगा यह एक विचारणीय प्रश्न ही है। शास्त्रज्ञों का मत है कि दूध वास्तव में १४०°-१५५° फै. के बीच उष्णता पर कम से कम बीस मिनिट तक तपाया जाना चाहिये। तापमान यदि १५५° फै. से ऊँचा हो तो बीस मिनिट का समय उस प्रमाण से कम करने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन किसी भी हालत में पाँच मिनिट से कम समय तक दूध तपाना अच्छा न होगा। हिन्दुस्थान में बाल मृत्यु का औसत प्रमाण इतना अधिक रहने का कारण दूध का अच्छी तरह न तपाया जाना भी हो सकता है। पर यही एक कारण उसके लिये जिम्मेवार नहीं है। छोटे बच्चों को अच्छी तरह न उबाले हुए दूध को कभी भी न पिलाया जाय। धारोष्ण दूध शरीर स्वास्थ्य के लिये उपयुक्त तो जरूर है; लेकिन वह भी स्वस्थ जानवर का ही हो, अन्यथा उसे भी अहितकारी ही समझना चाहिये।

दूध के स्वादिष्ट पकान्न

लेखिका—**श्रीमती इंदिराबाई दीक्षित**

बिरयानी

सामग्री—चक्का-दही और ताजे पके हुए फल। आम, संत्रा, अंगूर, मौसम्बी, चीकू, अननस, केले, पपीते या दूसरे कोई भी गूदेदार फल काम दे सकते हैं।

लगभग एक सेर चक्के-दही में दो आम (हापूस या पायरी; जिनको छीलकर टुकड़े बनाये जा सकते हैं), १ संत्रा, १ मौसम्बी, ४ चीकू, आधा अननस, आधा पपीता, ४ अंजीर, पर्याप्त चीनी (प्रायः श्रीखण्ड के लिये जितनी पर्याप्त होती हैं), चुटकी भर नमक और सुगंध के लिये केशर के बदले थोड़ा सा व्हेनिला एसेन्स डालकर किंचित पतला सा मिश्रण (श्रीखण्ड की नाईं) बनाओ। फिर फलों के छिलके और बीज अलग कर गूदे के छोटे छोटे (१ इंच लंबे चौड़े) टुकड़े काट लो। संत्रे और मौसम्बी को छीलकर उनकी कलियाँ भी अलग अलग कर ली जावें और उन्हें श्रीखण्ड के मिश्रण में मिला दो। यही पदार्थ 'बिरयानी' कहलाता है। गर्मी के दिनों में श्रीखण्ड का यह बर्तन दूसरे किसी बड़े गंज में रख दो तथा उसके आसपास बरफ के टुकड़े डाल दिये जावें। बिरयानी खूब ठण्डी होने पर खाने के लिये तश्तरियों में निकाल लो। यह खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है। इसमें फल होने की वजह से इसके हजम होने में कोई दिक्कत नहीं होती। जो भी मीठे फल मिलें काम दे सकेंगे। किसी खास फल के लिये रुकने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी आम, अननस और चीकू मिलने पर बिरयानी बहुत बढ़िया बनती है।

दूध-दही की बड़ियाँ

१ कप दूध, १ कप चक्का-दही, २ कप चीनी और थोड़ी-सी इलायची का चूर्ण। पहिले दही-शक्कर एक में अच्छी तरह मिला लो। पश्चात् उसमें दूध डालकर मिश्रण को मन्दाग्नि पर रख कर चलाते रहो। काफी गाढ़ा होकर जब घी निकलता हुआ दिखाई दे तब बर्तन को नीचे उतार लो। फिर थाली में थोड़ी सी बारीक शक्कर फैलाकर उस पर इस गोले को थोप दो और उसकी बड़ियाँ काट लो। बर्तन चूल्हे पर से नीचे उतारने के पहिले उसमें सुगंध के लिये इलायची को महीन पीसकर डालना चाहिये।

बफाया हुआ दही—यह पकान्न बंगाली लोग अधिक बनाया करते हैं। उत्तम खालिस दूध होने पर ही यह दही अच्छा बन सकता है।

पहिले १ कप दूध में दो चम्मच (चाय का) के हिसाब से शक्कर मिला लो। फिर उसमें एक कप दूध के लिये पाव कप के हिसाब से मामूली खट्टा-सा दही मथकर डालो और किसी कलई की हुई थाली में उण्डेल लो। पश्चात् भैंस के कच्चे दूध की तरह बफाकर बड़ियाँ काट लो।

दुग्धव्यवसाय में आने वाली अड़चनें

लेखकः—**श्री भा. स. करमलकर,** एम्. एस्सी.

खालिस दूध की आशा करना व्यर्थ है

आजकल खालिस दूध का मिलना असम्भव सा ही हो बैठा है। जो अवस्था खालिस दूध की है, वही मक्खन, घी आदि दुग्धजन्य पदार्थों की भी है। दूध में पानी की मिलावट इतनी सफाई से की जाती है कि कुछ निश्चित मर्यादा तक सिर्फ उसको देखकर ही पानी का पता नहीं लगाया जा सकता। अपनी आँखों के सामने ही दूध दुहवा लेना सभी के लिये सम्भव नहीं हो सकता। खासकर शहर निवासियों के लिये तो बिलकुल ही असम्भव है। दूध में पानी की मिलावट करने से उसकी रुचि तो बिगड़ ही जाती है; लेकिन अन्न की दृष्टि से भी वह निम्न दर्जे का हो जाता है।

शुद्ध (खालिस, स्वच्छ और पौष्टिक) दूध की पूर्ति करने का प्रश्न आजकल बड़ा ही कठिन हो गया है। खास कर शहरों में तो यह समस्या बहुत ही बिकट हो गई है। शहरों से दूर देहातों में यह अड़चन उतनी तीव्रता से महसूस नहीं होती। आजकल शहरों को जो दूध पुराया जाता है, उसमें से बहुत ही थोड़ा दूध खास शहरों की मवेशियों का होता है। करीब करीब सभी दूध समीप के देहातों से पुराया जाता है। वैसे तो शहरों में कर्णप्रिय 'डेअरी' नाम धारण कर दुग्धव्यवसाय करने वाली कुछ संस्थाएँ दिखाई देती हैं; पर वे सिर्फ नामधारी ही होती हैं। उनका मुख्य व्यवसाय आसपास के देहातों का दूध इकट्ठा कर शहरों में बेचना, अर्थात् परोक्ष में दलाली करना ही होता है। खुद की मवेशियाँ रखकर उनका दूध बेचने वाली डेअरियाँ बिरली ही होती हैं। शहर निवासियों के डेअरी वाले अक्सर देहाती गौली ही हुआ करते हैं और इसीसे आज शहरों में स्वच्छ और खालिस दूध मिलने का प्रश्न बहुत कठिन हो गया है। ये लोग मूर्ख तथा अशिक्षित होते हैं और इसी कारण वे स्वच्छता के महत्व को नहीं जानते तथा पैसों की लालच से उसे जानने का प्रयत्न भी नहीं करते। वे यह समझते हैं कि जानवरों की स्वच्छता, गोष्ठों की साफसफाई तथा उनमें गन्दगी न होने देना आदि सभी बातें डॉक्टर और पढ़े लिखे लोगों द्वारा निर्माण की हुई सिर्फ बेवकूफी है। शिक्षण का प्रसार हुए बिना इससे छुटकारा पाना असम्भव ही है।

विक्रेता और ग्राहकों का टगाफार

ग्राहकों को शुद्ध, खालिस, और स्वच्छ दूध मिलना चाहिये, यह बात तो सही है; लेकिन समय आने पर उन्हें खालिस दूध के लिये कीमत देने को भी तैयार रहना चाहिये। पर हम देखते हैं कि इसके लिये उनकी तैयारी नहीं होती और डेअरी वालों की यही मुख्य शिकायत होती है। वे कहते हैं कि इसीलिये स्वच्छता आदि बातों पर किया जाने वाला खर्च निकल नहीं पाता और इस तरह धंधे में घाटा होता है। इसी कारण डेअरी वालों की दृष्टि से दूध में मिलावट करने के सभी तरीके अपरिहार्य होते हैं। मिलावट करने के तरीकों का अवलम्बन किये बिना उन्हें धन्धा चलाना मुश्किल होता है। शुद्ध दूध के प्रश्न का हल किया जाना कठिन होने का यही मुख्य कारण है। जिस तरह गेहूँ, चाँवल, तथा सागसब्जियों को देखकर ही उनका दर्जा (Quality) निश्चित किया जा सकता है, उसी तरह दूध को देखकर नहीं किया जा सकता। सभी चीजें टके सेर के न्याया-नुसार ग्राहक उत्तम तथा कनिष्ट दर्जे के दूध को एक ही तुला पर तौलता है और उचित कीमत देने के लिये वह तैयार नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में भला खुद का पैसा खर्च कर अच्छा दूध देने की कोशिश कौन करेगा? गौलियों का भी क्या विश्वास कि वे

अधिक भाव देने वालों को खालिस ही दूध देंगे अथवा उनका दिया हुआ दूध खालिस ही है, यह भी कैसे कहा जा सकता है। सिर्फ दूध को देखकर ही उसका दर्जा निश्चित करना तो असम्भव ही है। इस प्रकार विक्रेता और ग्राहक, इन दोनों का कहना सरसरी तौर पर एवं अपने अपने दृष्टिकोणों से बिलकुल सही जान पड़ता है। परन्तु उनका आपस में अविश्वास होने के कारण दूध-पूर्ति की समस्या अधिक उलझी हुई दिखाई देती है। विश्वास पात्र लोगों या संस्थाओं के हस्तक्षेप किये बिना इस समस्या का सन्तोषजनक हल होना असम्भव है। अपनी आँखों के सामने दुहे गये दूध के सिवाय अन्य किसी भी दूध को शुद्ध दूध समझने के लिये सर्वसाधारण ग्राहक राजी नहीं होते और शहरों में प्रत्येक को उनकी नजरों के सामने दूध दुहवाकर देना असम्भव होता है। परिणाम स्वरूप शहर निवासियों को हमेशा दूध की कमी का अनुभव करना पड़ता है।

यह प्रश्न सहकारी पद्धति से धन्धा चलाने पर हल हो जायगा

खालिस और स्वच्छ दूध की पूर्ति कैसे की जाय, इस पर विचार करने के साथ ही साथ दूध की कीमत का भी विचार करना चाहिये। शुद्ध दूध की चाह रखने वाले ग्राहकों को अब यह बात धीरे धीरे पटने लगी है कि उन्हें उसकी कीमत भी अधिक देनी पड़ेगी तथा उचित कीमत देने वालों को बिलकुल खालिस दूध देने की विक्रेताओं की भी तैयारी दिखाई दे रही है। बहुतेरे लोगों का शुद्ध दूध की उचित कीमत न देने का कारण यही है कि उन्हें दूध की शुद्धता के सम्बन्ध से विश्वास नहीं होता। अमुक जगह का दूध शुद्ध, स्वच्छ और खालिस होता है, इस पर एक बार जनता को विश्वास हुआ कि फिर उस दूध की उचित कीमत मिले बिना न रहेगी। हाँ इस बात को तो मानना ही होगा कि व्यक्तिशः धन्धा करने वाले को जनता में ऐसा विश्वास पैदा करा देना कठिन ही होगा; लेकिन यह धन्धा 'सहकारी' तत्वों के आधार पर चलाया जाय, तो उतनी कठिनाई मालूम न होगी। इस तरीके से जनता को शुद्ध दूध तो मिलेगा ही, साथ ही विक्रेता को भी उसकी उचित कीमत प्राप्त होगी।

यदि एक ही मनुष्य या संस्था विश्वसनीय दूध पुराने का निश्चय कर ले, तो उस मनुष्य या संस्था को यश प्राप्त होना कठिन ही होगा। क्योंकि धन्धा चलाने के लिये पर्याप्त मवेशियाँ खरीदने, उनके रहने, खाने-पीने का उत्तम प्रबन्ध करने, उनकी ठीक ठीक देखभाल करने एवं संवर्धन करने आदि बातों पर वह काफी पैसा खर्च कर सकता है; लेकिन अन्य धन्धे वालों ने यदि उससे स्पर्धा की तो बाजार में उसके दूध की उचित कीमत नहीं मिलेगी और धन्धा घाटे में आ जायगा। ऐसा कहने में कोई हर्ज नहीं है कि फिलहाल डेअरी के नाम पर सिर्फ दलाली का ही धन्धा चलता है। आजकल की डेअरियों का स्वरूप सिर्फ देहातों से दूध इकट्ठा कर बेचना ही है। पर्याप्त पूंजी के अभाव में ऐसा करना ही पड़ता है। शांति के समय में भी पन्द्रह-बीस जानवरों की छोटी सी डेअरी चलाने के लिये कम से कम पाँच हजार रुपिये की पूंजी सहज ही लगानी पड़ती है और इतने पर भी खास अवसरों पर माँग पूरी करने के लिये दूसरे लोगों से दूध लेकर उसकी पूर्ति करनी पड़ती है। ऐसी हालत में भला दूध की शुद्धता के सम्बन्ध से कैसे विश्वास दिलाया जा सकता है? इस अड़चन को टालने की दृष्टि से आगे दी हुई योजना अधिक उपयुक्त होगी।

दुधारू जानवर किराये पर लेने-देने की प्रथा शुरू करो

छोटी सी पूंजी में दुग्धव्यवसाय करने की इच्छा रखने वालों का देहातों से दूध खरीदने के बदले दुधारू जानवर ही कुछ दिन के करार पर किराये से लेना अधिक उचित होगा। उन जानवरों का दूध बेचकर उनके मालिक को जितना लाभ होता होगा,

उतना ही फायदा यदि किराये के रूप में उनको दिया गया, तो ऐसे जानवरों का किराये पर मिलना कठिन नहीं होना चाहिये। इस तरह दुधारू जानवर किराये पर लेने से डेअरी वाले अपनी निगरानी में उनका दूध प्राप्त कर सकेंगे तथा वे स्वच्छता, साफ-सफाई आदि बातों पर भी ध्यान दे सकेंगे। जानवरों को चारा, खुराक और बिनौले आदि की अच्छी खिलाई देकर उनके दूध का दर्जा भी बढ़ाया जा सकेगा। जानवरों को खरीदने के लिये पूंजी भी निष्कारण ही फँसी न रहेगी और दूध न देने वाले जानवरों के पालन-पोषण का व्यर्थ खर्च भी अपने मत्थे नहीं पड़ेगा। हमें ऐसा विश्वास है कि अल्प पूंजी में डेअरी का धन्धा करने वालों के लिये यह योजना अधिक सुविधे की होगी। जानवरों के मालिकों को भी इस तरह की योजना से कोई नुकसान नहीं होगा। बिना किसी प्रयास के उनको पहिले जैसा ही अथवा थोड़ा कम ज्यादा द्रव्यलाभ होगा और जानवरों पर उनका अधिकार भी रहेगा। इतना ही नहीं डेअरी वालों के पास जब तक जानवर किराये पर रहेंगे तब तक अधिक दूध की आशा से ही क्यों न हो; पर वे अच्छी खुराक मिलने से काफी अच्छे तन्दुरुस्त रहेंगे। इस योजना की नूतनता के कारण शुरू शुरू में जानवरों का किराये पर उठाना जरा अजीब सा मालूम होना सम्भव है; लेकिन जिस तरह आम या संतरे के बगीचे मौसम पर किराये से लेने देने की प्रथा है, उसी तरह यह भी एक योजना है। थोड़ा विचार करने से यह बात सहज ही ध्यान में आ सकती है।

दूध जैसी ही दुग्धजन्य पदार्थों की भी काफी माँग है

भारत में डेअरी के धन्धे का क्षेत्र बहुत ही सीमित है। आजकल अनेक डेअरियाँ सिर्फ दूध की पूर्ति करने का ही काम प्रमुखता से करती हैं। मक्खन, घी, खोआ आदि दुग्धजन्य पदार्थ भी बड़े पैमाने पर तैयार कर बेचने के लिये काफी गुंजाइश है। हिन्दुस्थान में शहरों की संख्या कम है। आवागमन की सुविधाओं का भी अभाव है तथा दूध शीघ्र ही खराब हो जाने वाला पदार्थ होने से (Perishable Commodity) शहरों को अधिक दूरी पर होने वाले देहातों के द्वारा दूध पुराया नहीं जा सकता। ऐसे देहातों की डेअरी वाले अथवा गौली मक्खन, घी, खोआ आदि दुग्धजन्य टिकाऊ (दूध की अपेक्षा) पदार्थों के उत्पादन की ओर ध्यान दें, इससे डेअरी के धन्धे में काफी किफायत होगी। खासकर विश्वसनीय मक्खन और अच्छे घी की आज सभी जगह कमी है।

उच्च जातीय मवेशियों की पैदायश, जानवरों के लिये चारा, बिनौले, तुअर (अरहर) आदि पदार्थों का भी डेअरी के धन्धे में ही समावेश करना अनुचित न होगा।

दुग्धव्यवसाय के लिये अनुकूल परिस्थिति

ऐसा कहा जाता है कि हिन्दुस्थान के जानवरों की संख्या अखिल विश्व के जानवरों की संख्या का तीसरा हिस्सा है। साथ ही अपना देश कृषि प्रधान होने से लगभग

७० प्रतिशत लोगों का निर्वाह कृषि के भरोसे ही होता है। इस तरह दुग्धव्यवसाय के लिये यहाँ पर अत्यधिक अनुकूल परिस्थिति है। इन सब साधनों से उचित लाभ उठाया जाय तो दूध तथा तज्जन्य पदार्थों के उत्पादन में भारतवर्ष को अग्रस्थान प्राप्त होने के लिये कुछ अधिक समय नहीं लगेगा।

बकरी के दूध का भी उपयोग करना चाहिये

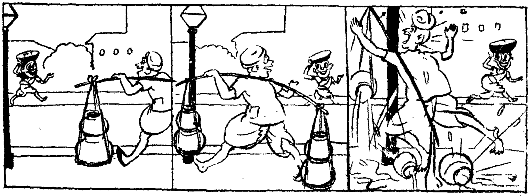
आजकल शहरों में दूध की कमी बड़ी तीव्रता से महसूस की जा रही है। इसका दूसरा कारण यह है कि शहरों में जनसंख्या का प्रमाण हद से ज्यादा बढ़ता जा रहा है। आवागमन की सुविधाएँ न होने से शहरों से काफी दूरी वाले स्थानों से शहरों में दूध नहीं लाया जा सकता। इसीलिये स्वाभाविक ही शहरों में दूध की कमी प्रतीत होती है। इसी तरह अपनी ओर गाय भैंसों का ही दूध उपयोग में लाया जाता है। लेकिन उसके साथ यदि बकरी का भी दूध उपयोग में लाना शुरू कर दिया जाय, तो दूध की कमी अल्पांश में ही क्यों न हो पर कम अवश्य की जा सकेगी।

ऐसा अनुभव किया गया है कि ऊँची जाति की बकरियाँ प्रतिदिन तीन सेर तक दूध दे सकती हैं। बकरियों कि वृद्धि भी तीव्र गति से होती है। उत्कृष्ट दुधारू बकरियों की पैदायश करने की ओर यदि ध्यान दिया जाय, तो उनसे सहज ही अधिक मात्रा में दूध मिल सकेगा। बकरी का दूध बहुत पौष्टिक होता है; खासकर जिनकी पचनशक्ति कम हो गई है, ऐसे व्यक्तियों को वह अधिक फायदा पहुँचाता है। इसके दूध से मक्खन भी निकाला जा सकता है।

बकरी का दूध भी गाय-भैंस के दूध जैसा ही अच्छी तरह उबाल लेने पर उपयोग में लाया जाय। क्योंकि इस दूध के द्वारा अनेक रोगों के प्रसार की सम्भावना होती है। अच्छी तरह उबाल लेने के बाद यह भय नहीं रहता।

बकरी गाय-भैंस की तुलना में बहुत कम कीमत में मिल सकती है और इसी कारण वह अपने देश के लिये अत्यधिक उपयुक्त है। बकरियों के द्वारा अनेक गरीब लोगों के दूध की समस्या हल भी हो जायगी। बकरी के दूध का और गाय के दूध का पृथक्करण करने पर प्राप्त हुई जानकारी आगे दी गई है, जिस पर से आपको यह दीख पड़ेगा कि गाय और बकरी के दूध में विशेष फर्क नहीं है; उल्टे बकरी का ही दूध गाय के दूध से अधिक उपयुक्त है—

दूध के मूलद्रव्य	गाय के दूध में प्रतिशत प्रमाण	बकरी के दूध में प्रतिशत प्रमाण
पानी	८७.८	८६.३
घन पदार्थ	१२.२	१३.७
चर्बीयुक्त पदार्थ	३.४	४
प्रथीन (Proteins)	३.४	४.६
शक्कर	४.७	४.३
अन्य पदार्थ	.७	.८
एक औंस दूध से प्राप्त होने वाली उष्णता	१८ केलरी	२० केलरी



दूध से अनेक तरह की मिठाइयाँ तैयार करना

लेखिका :—श्रीमती मंदाकिनी करमलकर

पेढ़ा, बर्फी, कलाकन्द आदि खोवे से बनने वाली भाँति भाँति की मिठाइयों से हम सब लोग काफी परिचित हैं। इनके सिवाय और भी अनेक तरह की मिठाइयाँ दूध से बन सकती हैं। उनमें से टॉफी और बंगाली मिठाइयों के बनाने की रीतियाँ इस लेख में दी गई हैं।

टॉफी

टॉफी यह बच्चों को खूब भाने वाली, प्यारी, पौष्टिक और टिकाऊ मिठाई है। इस महँगाई के जमाने में भी ऊँचे दर्जे की टॉफी नीचे दिये हुए तरीके के अनुसार बनाई जा सकती है —

सामग्री—दूध— तीन हिस्से (नाप कर)
शहद— आधा हिस्सा (,, ,,)
चीनी— दो हिस्से (,, ,,)

थोड़ा सा मक्खन, कोको, व्हेनिला एसेन्स आदि।

विधि—किसी मोटी पेंदी वाले कलई किये हुए बर्तन में दूध का कुछ हिस्सा (लगभग आधा) लेकर उसमें शहद और शक्कर मिला दो। इस बर्तन को स्टोव्ह या सिगड़ी पर चढ़ाओ। कुछ देर के बाद दूध उबलने लगेगा तथा गाढ़ा होने लगेगा। इस समय शेष बचा हुआ थोड़ा थोड़ा दूध जैसे जैसे दूध गाढ़ा होता जाय बर्तन में छोड़ते जाइये। इस प्रकार सम्पूर्ण दूध छोड़ने के बाद बर्तन का दूध खूब उबलने और गाढ़ा होने दो। दूध के गाढ़े होते समय और बर्तन में शेष दूध डालते समय उसे करछुली से लगातार चलाते रहना आवश्यक होता है। दूध चलाने के लिये लकड़ी की करछुली का उपयोग किया जाय। लोहे या पीतल की करछुली शीघ्र ही गरम हो जाती है, जिससे मिश्रण ठीक तरह से चलाया नहीं जा सकता। जैसे जैसे दूध गाढ़ा होता जाता है, उसका रंग पीला-सा होने लगता है और उससे मीठी महक आने लगती है। धीरे धीरे अन्त में मिश्रण शहद की तरह गाढ़ा बन जाता है। इसके बाद थोड़े से मक्खन में कोको मिलाओ (एक सेर दूध में लगभग दो चम्मच मक्खन और एक सपाट चम्मच कोको) और उष्णता देना चालू रखो। शीघ्र ही टॉफी तैयार हो जावेगी। मक्खन मिलाने के बाद ११५° से ११८° (सेंटीग्रेट) तक उष्णता देना चाहिये। उष्णता मापक यंत्र (थर्मामीटर) न होने पर बर्तन का थोड़ा सा गरम मिश्रण ठण्डे पानी में डालकर देखो, यदि उस पाक की गोली बन जाय तो समझ लीजिये कि टॉफी तैयार हो गई। कुछ अभ्यास के बाद टॉफी बन गई अथवा नहीं यह उक्त तरीके से जाना जा सकता है। टॉफी तैयार हो जाने के बाद एक थाली में घी चुपड़कर उसमें इस मिश्रण को उंडेलकर जमा देना चाहिये। दूसरे दिन यह गाढ़ा गोला सिल पर लोढ़े से अच्छी तरह गूँथा जाय। इस समय उसमें थोड़ा सा व्हेनिला एसेन्स भी छोड़ दो। इतना होने के बाद उसकी चौरस, गोल या चाहे जिस आकार की बट्टियाँ बनालो। ये बट्टियाँ कागज (बटर-पेपर) में लपेटने से अधिक दिन तक टिक सकती हैं। आजकल दार्जिलिंग ब्रुकबॉण्ड चाय एक खास तरह के धातु के कागज में लपेटी हुई आती है। इस कागज में भी टॉफी की बट्टियाँ लपेटी जा सकती हैं। शहद और दूध उत्तम होने पर यह टॉफी बड़ी ही मधुर मालूम होती है। मिश्रण गरम करते समय बहुधा वह फट जाता है। इसका मूल कारण दूध या शहद अथवा दोनों का शुद्ध न होना ही है। ऐसा हो जाने पर उधर ध्यान न देते हुए मिश्रण गाढ़ा करने की क्रिया को बराबर जारी रखो; टॉफी बराबर बन जावेगी। उक्त सूत्र में शक्कर का अनुपात अपनी रुचि के अनुसार कुछ कम ज्यादा किया जा सकता

है। पर शक्कर बहुत ही कम रहने से टॉफी अधिक दिन तक टिक नहीं सकेगी।

बंगाली मिठाई (रसगुल्ला, चमचम, सन्देश आदि)

रसगुल्ला, चमचम, सन्देश आदि बंगाली मिठाइयाँ बहुत ही स्वादिष्ट होती हैं। अब धीरे धीरे इनका प्रचार दूसरे प्रान्तों में भी होने लगा है। बंगाली मिठाइयाँ बनाने की निम्न विधि एक कुशल बंगाली महिला ने मुझे बतलाई है। इस विधि के अनुसार दो-चार बार मिठाई बनाने की चेष्टा करने पर अभ्यास और अनुभव से सफलता अवश्य ही मिलेगी।

"छेना" बनाना—इस मिठाई को बनाने के लिये पहिले दूध का "छेना" बनाना पड़ता है। "छेना" जिस दर्जे का होगा उसी दर्जे की मिठाई भी बनेगी। "छेना" बनाने के लिये गाय का दूध (गाय का न मिलने पर भैंस का) इतना गरम करो कि वह उबलने लग जाय। जब दूध उबलने लगे तब उसमें एक-दो नीबू का रस छोड़ो। एक सेर दूध के लिये दो अच्छे रसीले नीबू का रस पर्याप्त होता है। नीबू का रस छोड़ते ही दूध फटता है और फटे हुए दूध का गाढ़ा भाग नीचे जम जाता है। ऊपर का पानी यदि दुधैला हो, तो उसमें और भी थोड़ा रस छोड़ो। इससे सम्पूर्ण फटे हुए दूध का गाढ़ा हिस्सा नीचे जम जायगा। यही गाढ़ा भाग 'छेना' कहलाता है। उस पर का पानी नीले-से रंग का दिखाई देना चाहिये। नीबू न मिलने पर साइट्रिक एसिड (जो किसी भी रासायनिक पदार्थों की दूकान में मिलता है) का प्रयोग करने से भी दूध फट सकता है। दूध फटने पर उसको श्रीखण्ड की नाईं चक्का बनाने के लिये कपड़े में बाँधकर ऊपर टाँग दो, जिससे सारा पानी टपक टपक कर निथर जावेगा और कपड़े में सिर्फ "छेना" ही शेष रहेगा। "छेना" बिलकुल निर्जल होने के लिये सिल या किसी वजनी पदार्थ के नीचे उसे दबाकर रखना आवश्यक होता है। इसी 'छेने' से रसगुल्ला, सन्देश आदि बंगाली मिठाइयाँ बनती हैं। कई लोग थोड़े फटे हुए दूध के ऊपर निथरे हुए नीले-से पानी का पुनः दूध फाड़ने के लिये उपयोग करते हैं और इस प्रकार बनाये हुए 'छेने' की मिठाई बनाते हैं। यह नीला-सा पानी बोतल में भरकर रखने से पन्द्रह दिन तक ज्यों का त्यों रह सकता है। केवल शक्कर मिलाकर भी 'छेना' खाया जा सकता है। बहुत ही स्वादिष्ट होता है।

रसगुल्ला

आधा सेर छेना, ढाई सेर चीनी और पानी एक सेर तथा ४ औंस (लगभग एक कप) दूध और १२ औंस पानी का मिश्रण। चाहो तो छेने (आधा सेर) में एक तोला आरारोट भी मिला सकते हैं।

एक थाली में थोड़ा थोड़ा छेना लेकर उसमें थोड़ी थोड़ी शक्कर मिलाओ। आधा सेर छेने के लिये कप देढ़ कप शक्कर पर्याप्त होती है। छेने को खूब मलकर शक्कर के साथ पूरा मिला दो। फिर थोड़ा थोड़ा छेना लेकर रसगुल्ले के आकार के छोटे छोटे गोले बनालो।

बची हुई चीनी और पानी की कच्ची चाशनी (पाक) बनाओ। ऊपर का मैल निकालते जाओ। चाशनी तैयार होने पर उसके दो हिस्से करो। एक हिस्सा चाशनी चूल्हे पर रखकर उसमें छेने के गोले एक के बाद एक छोड़ दो। चाशनी उबलकर गाढ़ी होने लगती है। चाशनी को अधिक गाढ़ा न होने देने के लिये उसमें उक्त पानी का मिश्रण डालते रहो, जिससे वह पहिले जैसी ही पतली बनी रहती है। मिश्रण डालने से झाग आकर चाशनी उबलने लगती है। अब इसमें रसगुल्लों को डालकर करछुली से हिलाते रहो। इस चाशनी में लगभग आधा घंटा पकने के बाद रसगुल्ले अच्छे फूलते जाते हैं और पककर तैयार हो जाते हैं। अब उन्हें करछुली से निकालकर शेष रखी हुई चाशनी में छोड़ दो। पाँच-छः घण्टे के बाद चाशनी में वे खूब भीग जाते हैं और खाने के लायक बन जाते हैं। उत्तम रसगुल्ले स्पंज की नाईं तैयार होने चाहिये।

चमचम

छेना एक सेर; खा एक छटाक और चीनी ढाई सेर। चमचम बनाने की विधि भी रसगुल्ले जैसी ही है। चमचम में रंग या केशर मिलाया जाता है। रसगुल्ले सफेद रहते हैं। अच्छे रसगुल्लों के गोले में बीचों-बीच खोआ या बेदाना आदि पदार्थ डाले जाते हैं। जिस प्रकार रसगुल्ले बनाते हैं, उसी प्रकार छेना और खा एक साथ गूँथकर उसके चमचम के आकार के गोले बना लो। रसगुल्ले के छेने में शक्कर भी गूँथी जाती है। पर चमचम के छेने में शक्कर न मिलाई जावे।

शक्कर की चाशनी बनाओ और जब वह उबलने लगे तब उसमें चमचम के गोले छोड़ दो। इस पाक में लगभग पन्द्रह-बीस मिनिट तक गोले पकने के बाद चमचम तैयार हो जाती है। चमचम बन गया है अथवा नहीं यह देखने के लिये एक बर्तन में थोड़ा सा पानी लेकर उसमें एक तैयार चमचम छोड़ो। यदि वह पानी पर तैरने लगे तो समझ लीजिये कि चमचम तैयार हो गया। पर यदि वह पानी में डूब जाय तो उसे और कुछ देर तक पकाना आवश्यक होता है। चमचम बनकर तैयार-सा दिखाई देने पर एक बर्तन में पानी लेकर थोड़ा थोड़ा पानी इस उबलते हुए पाक में छोड़ते जाओ। इसके बाद जब पुनः पाक उबलने लगे तब बर्तन को नीचे उतार लो और एक एक चमचम करछुली से निकालकर शक्कर में इस तरह मिलाओ कि चमचम के गोलों पर पर्याप्त शक्कर लिपट जावे। इस तरह उत्तम चमचम तैयार हो जाता है।

संदेश

पहिले जैसा ही छेना तैयार करो और उसे कपड़े में बाँधकर रखो, जिससे उसका सारा पानी निथर जावेगा। फिर उसे सिल के नीचे दबाकर निर्जल कर लो। सन्देश के लिये आधा सेर छेना लेकर उसको अच्छी तरह मलो। चाहो तो उसमें केशर, जायफल, इलायची आदि महीन पीसकर मिलालो। एक बर्तन में पाव सेर चीनी लेकर उसमें छेना डालो और यह मिश्रण मन्द अग्नि पर गरम होने दो तथा चम्मच से लगातार हिलाते रहो ताकि उसमें शक्कर अच्छी तरह मिल जावे। आँच अधिक तेज मत होने दो, नहीं तो चीनी जलने लगेगी। मन्दाग्नि पर लगभग पन्द्रह-बीस मिनट तक पकाने के बाद बर्तन नीचे उतार लो। चाशनी जब तक अच्छी तरह सूख न जाय, उसे लगातार चलाते रहो; उत्तम सन्देश तैयार हो जावेगा। इसके पश्चात् आम, अमरूद आदि फलों के आकार वाले छोटे छोटे साँचों में दबाकर सन्देश को भाँति भाँति के आकार दिये जाते हैं।

बंगाली मिठाई के लिये छेना बनाते समय जो नीला-सा पानी ऊपर शेष रहता है, उसे फेंका न जावे। यह पानी बहुत पौष्टिक होता है। बीमार लोगों को तो यह पानी फायदा पहुँचाता ही है, पर स्वस्थ लोगों के लिये भी बहुत लाभदायक होता है। इस पानी को पीने से शायद वह रुचिकर न मालूम हो; किन्तु मठे के साथ मिलाकर यदि पिया जाय, तो अच्छा मालूम होगा। यह पानी छोटे बच्चों के लिये बहुत ही लाभदायक होता है।

—आधी कटोरी दूध में डेढ़ चम्मच (चाय का) काली मिर्च का महीन चूर्ण डालकर उसे उबालो। अधिक जुकाम होने पर कई लोग सिर गीला न करते हुए नहाया करते हैं। ऐसे समय उक्त दूध सिर पर (टाल) अच्छी तरह मल लिया जाय तो सिर पर पानी डालकर भी नहाया जा सकता है। इससे सर्दी बढ़ेगी नहीं तथा यदि सर्दी दब गई हो तो पुनः उसके उलटने का भय भी नहीं रहेगा।

(पृष्ठ नं. २० का शेषांश ।)

माल के लाने–ले जानें का धन्धा करने वालों को भी आवश्यक सहूलियतें देकर तथा किराये के रेट घटा कर दूध के व्यापारियों को मदद करना जरूरी है। म्युनिसिपैलिटी को भी शुद्ध तथा विश्वसनीय दूध बेचने वाले दुग्धालयों को ही स्वीकृति–पत्र देने की पद्धति शुरू करनी चाहिये और कुछ निश्चित दुग्धालयों को ही यह स्वीकृति–पत्र देना चाहिये। इस तरह कड़ा नियंत्रण रखने से इस धन्धे में काफी सुविधा होगी। इसी तरह मिलावट के कानून का अमल भी अधिक सख्ती से करना चाहिये।

सहकारी ढँग से धन्धा करने का प्रयत्न

मैं और मेरे दो स्नेही–(१) दादासाहब ठुबे और (२) श्री रणजीतसिंह पाटनकर (अनुक्रम से सरदार रा. ब. ठुबे के पुत्र और सरदार पाटनकर के पुत्र) ने मिलकर यह धन्धा काफी बड़े पैमाने पर करने का निश्चय किया। उसके मुताबिक १ दिसम्बर १९४५ से हम तीनों ने मिलकर भैंसें इकट्ठी कर 'जी. टी. पी. डेअरीज' संयुक्त नाम रखकर धंधा किया है। फिलहाल हमारे पास दुधारू और गाभिन मिलकर करीब करीब १०० भैंसें हैं। इस धन्धे में लगभग ५०,००० रुपिये की पूंजी लगाई गई है। पूना के समीप ही दो मील की दूरी पर सरदार ठुबे के 'पद्मानगर स्कीम' के पास ही हम लोगों ने अपने जानवरों के लिये गोष्ठ बाँधे हैं। जानवरों के हरे चारे और उनके चरने के लिये हमारे पास करीब करीब १५० एकड़ जमीन है। श्री दादासाहब और श्री रणजीतसिंह के सहयोग से ही मैं इतने बड़े पैमाने पर धन्धा बढ़ा सका। आगे के एक–दो महिनों में ही डेअरी को लिमिटेड बनाने का निश्चय भी हो चुका है, जिसके अनुसार हमारी आगे की समस्त योजनाएँ भी बन गई हैं।

हमारे धन्धे तथा माल की विशेषता

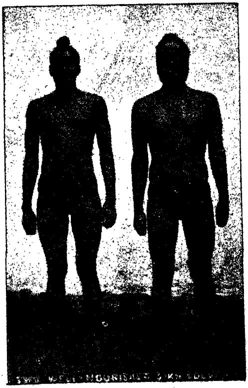
हमारे धन्धे तथा माल की विशेषताएँ आगे दिये अनुसार रहेंगी—

(१) ग्राहकों को ताजा, उत्तम और खालिस दूध तथा उससे तैयार किये हुए मक्खन, घी, जैसे पदार्थ योग्य समय पर पुराये जावेंगे।

(२) प्रत्येक बात में स्वच्छता तथा टीमटाम रखी जावेगी।

(३) डेअरी का दर्जा यहाँ तक बढ़ाया जावेगा कि दूध तथा दूध से तैयार होने वाले किसी भी खालिस पदार्थ के मिलने का स्थान पूछने पर प्रत्येक ग्राहक की जबान पर हमारी ही डेअरी का नाम आवे।

उत्तम ध्येय सामने रखकर उसकी ओर अग्रसर होने की चेष्टा हम लोग कर रहे हैं और विश्वास रखते हैं कि इस तरह धन्धा करने तथा बढ़ाने का प्रयत्न करने पर सफलता के उच्च शिखर पर हम लोग शीघ्र ही पहुँच जावेंगे।



देखिये दुग्धाहार का प्रभाव !

रामरतनपुर की मवेशी प्रदर्शनी में आया हुआ उत्कृष्ट सांड़





यह भैंस प्रतिदिन १२ सेर दूध देती है !

—: ग्राहकों से :—

१. आप किसी भी माह से ग्राहक बन सकेंगे।

२. 'उद्यम' का वार्षिक मूल्य ५ रु. ८ आ. है। (वी. पी. द्वारा ५ रु. १२ आ.) अर्धवार्षिक या त्रैमासिक मूल्य स्वीकार नहीं किया जाता। अतः वार्षिक मूल्य ही भेजने की कृपा कीजिये।

३. 'उद्यम' के प्रत्येक अंक में खेती-बागवानी, उद्योगधंधे, घरेलू व्यवसाय, स्वास्थ्य, जानवरों की हिफाजत आदि विषयों पर विस्तृत विवेचन पढ़िये।

४. 'उद्यम' की माँग, लायब्रेरियाँ, ग्रामपंचायतें, ग्रामसुधार मंडल, डिस्ट्रिक्ट कौंसिलें, लोकल-बोर्ड्स, म्युनिसिपैल्टियाँ, व्यापारिक संस्थाएँ, शालाएँ, कालेज, इसी प्रकार किसान, बागवान तथा दूकानदार, कारखाने वाले एवं उत्साही तरुण अधिक करते हैं।

५. अनेक व्यंगचित्रों एवं व्यवहारिक आँकड़ेवार जानकारी से सुसज्जित होकर उद्यम प्रतिमाह नियमित १५ तारीख को प्रकाशित होता है।

६. विज्ञापन दर सभी लोगों के लिये समान और फिक्स्ड है। विज्ञापन सुन्दर छपाई में तथा आकर्षक ढंग से प्रकाशित किये जाते हैं।

७. जनवरी १९४६ से ग्राहक बनने वालों को डेअरी विशेषांक (की. १ रु.) के साथ नियमित बारह माह तक प्रतिमाह १५ तारीख को अंक मिलते रहेंगे।

८. ग्राहक बनने के लिये अपना पूरा पता, गांव का नाम, पोष्ट, जिला तथा प्रान्त अवश्य लिखने की कृपा करें। पता बदलते समय पूर्ण पते के साथ ग्राहक नं. अवश्य लिखिये।

९. व्हीलर रेलवे स्टाल्स तथा सभी न्यूज पेपर एजेन्टों की माँग बढ़ती जा रही है। अतः आज ही वार्षिक मूल्य भेजकर उद्यम मासिक के समस्त अंक संग्रहित कर लीजिये।

उद्यम मासिक, धर्मपेठ, नागपुर.